जेदार
कहानियाँ
सुदर्शन सिंह 'चक्र'

मजेदार कहानियाँ

(सचित्र)

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशन विभाग

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवासंस्थान

मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

मूल्य— दो रुपये पचास पैसे

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित - प्रकाशित है।

प्रकाशक	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान
द्वितीय संस्करणकी प्रकाशन-तिथि—	विजया-दशमी, बि. सं. २०३७ १९ अक्टूबर, १९८०
प्रथम (सचित्र) संस्करण	५,००० प्रतियाँ
द्वितीय (सचित्र) संस्करण	५,२०० प्रतियाँ
तृतीय (सचित्र) संस्करण	५,२०० प्रतियाँ

प्रकाशन तिथि - १४ जनवरी, १९८२

मुद्रक	लक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स, गली मदरसा मीर जुमला, लाल कुआँ, दिल्ली-११०००६

MAJEDAR KAHANIYAN

—Sudarshan Singh Chakra

मूल्य—दो रुपये पचास पैसे

दो शब्द

'मजेदार कहानियाँ' 'कल्याण' का 'बालकाङ्क' निकलनेपर तब लिखी गयी थीं, जब गीताप्रेसने बाल-साहित्यका प्रकाशन करनेका निश्चय किया। वे सब बाल-साहित्यकी पुस्तकें जो बिना लेखकके नामके गीताप्रेसने छापीं, मैंने लिखीं। उसी क्रममें सन् १९५४ में ये कहानियाँ लिखी गयीं।

श्रीभाईजी (गोलोकवासी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी) ने इन कहानियोंको भी बहुत पसन्द किया था। इनके चित्र बनवाये, किंतु इस संग्रहको अनेक कारणोंसे उस समय प्रकाशनका अवसर नहीं मिला।

अब यह संग्रह श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरासे प्रकाशित हो रहा है॥

शिष्ट, शिक्षाप्रद, हास्यप्रधान ये कहानियाँ बालकोंको तो मजेदार लगेंगी ही, आशा है, बड़ोंका भी मनोरञ्जन करेंगी।

अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्षमें यह उपहार सब बाल-गोपालके करोंमें देते मुझे प्रसन्नता है।

—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

द्वितीय संस्करणके सम्बन्धमें

'मजेदार कहानियाँ' बालकोंको सचमुच इतनी मजेदार लगीं कि एक स्थानसे तो सुझाव आया कि 'मजेदार कहानियाँ' यह मासिकके रूपमें निकालिये।

प्रथम संस्करण वर्ष पूरा होनेसे कुछ पहिले ही समाप्त हो गया। अतः यह द्वितीय संस्करण देते मुझे प्रसन्नता है।

—लेखक

१९-९-१९८०

अनुक्रमणिका

डपोरशंख

एक छोटा-सा गाँव था। उस गाँवमें एक ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था शङ्करलालजी। लोग उन्हें शङ्कर पण्डित कहते थे। शङ्कर पण्डित बहुत निर्धन थे। उनका कच्चा घर छोटा-सा था। उसकी दीवालें पुरानी होकर फट गयी थीं और घरका खपरैलका छप्पर लो इतना फूटा-टूटा था कि मत पूछो बात। बरसातमें जितना पानी छप्परसे बाहर जाता था, लगभग उतना ही घरमें भी गिरता था।

शङ्कर पण्डित बेचारेको कभी किसीके यहाँ निमन्त्रणमें भले पूड़ी मिल जाय, घरमें तो भरपेट सूखी रोटी भी नहीं मिलती थी। इसलिए शंकर पण्डित बहुत दुबले थे। लोग उन्हें चिढ़ाते थे कि पण्डित आँधीमें घरसे मत निकला करो, नहीं वायु तुमको उड़ा ले जायगा।'

शंकर पण्डितके घर वे थे और उनकी पत्नी थीं। दूसरा कोई नहीं था। भूखों मरनेके लिए दो मनुष्य ही क्या कम हैं कि और ढेरों ढूँढ़े जायँ। पूजा-पाठ गाँवमें लोग कभी-कभी कराते हैं। पूजा-पाठ करानेपर जो कुछ मिल जाता, उसीसे शंकर पण्डितको काम चलाना पड़ता था। वे न भिक्षा माँगते थे, न दान लेते थे, न खेती करते थे। उनके घरमें कोई चूहा तक तो फटकता नहीं था। नित्य एकादशी करने कौन आवे।

शंकर पण्डित शंकरजीके बड़े भक्त थे। वे शंकरजीकी प्रतिदिन पूजा किया करते थे। शंकरजीको एक दिन दया आ

गयी। जब शंकर पण्डित मन्दिरमें पूजा करने गये तो उन्हें वहाँ एक छोटा-सा सुन्दर शङ्ख दिखायी पड़ा। मन्दिरमें उन्हें ऐसा लगा कि कोई कह रहा है—'पण्डित ! यह शंख ले जाओ। दिनमें एक बार इसकी पूजा करके इससे जितना धन माँगोगे, उतना यह दे देगा।'

शंकर पण्डित भगवानका प्रसाद समझकर शंख घर ले आये। उन्होंने शङ्खकी पूजा करके उससे पाँच रुपये मांगे। झट शङ्खसे चम-चम चमकते पाँच रुपये निकल पड़े। रुपये उन्होंने अपनी पत्नीको दे दिये।

शंकर पण्डितकी स्त्री एक रुपया लेकर गाँवके बनियेके पास आटा-घी खरीदने गयी। बनियेको बड़ा आश्चर्य हुआ कि पण्डितकी स्त्रीको रुपया कहाँ मिला। उसने पूछा—'पण्डितानीजी ! आज पण्डितजी किसी धनी यजमानके यहाँ पूजा कराने गये थे क्या ?'

पण्डितानी सीधी थीं। उन्होंने कहा—'पण्डितजी अब कहीं पूजा-पाठ कराने नहीं जायँगे। भगवानने कृपा कर दी है। अब तो पण्डितजी भगवानका ही भजन करेंगे।'

बनियेने पण्डितानीसे सब बात पूछ ली। वह बड़ा लोभी था। उसके मनमें आया कि किसी प्रकार पण्डितसे वह शङ्ख ले लेना चाहिये। वह पण्डितके पास गया और बोला—'महाराज ! आप तो तपस्वी हैं, भगवानके भक्त हैं, आपको शङ्खकी क्या आवश्यकता है। आपके भोजन-वस्त्रका मैं प्रबन्ध कर देता हूँ। शङ्ख आप मुझे दे दीजिये। सौ रुपये मैं शङ्खका मूल्य भी दूंगा।'

शंकर पण्डित बड़े उदार और सीधे थे। वे बोले—'यह शङ्ख तो भगवान शंकरका प्रसाद है। मैं इसका मूल्य नहीं

लूंगा। लेकिन मेरे जैसे दरिद्रके घर जब आप माँगने आये हैं तो मैं आपको निराश नहीं करूँगा। आप शङ्ख ले जाइये।'

बनिया शङ्ख लेकर घर आया। उसे शङ्खसे रुपया पानेकी छटपटी तो बहुत थी ; किंतु शङ्ख दिनमें एक ही बार रुपया देता था। बनियेको वह दिन बिताना ही बड़ा कठिन जान पड़ा। उसे एक डर भी था कि कहीं शङ्कर भगवान शंख लेनेसे क्रोध न करें। उसने सोचा था कि शंकर पण्डित जब पूजा करके लौट आवेंगे, तब उनसे मन्दिरमें क्या हुआ, यह पूछनेके बाद शंखसे रुपया माँगना ठीक होगा।

दूसरे दिन सबेरे जब शंकर पण्डित मन्दिरमें गये तो वहाँ एक बड़ा भारी उजला शंख दिखायी पड़ा। मन्दिरमें-से फिर कोई बोला—'पण्डित ! आज इस शंखको भी ले जाओ। इसकी पूजा करके इससे कुछ माँगना। लेकिन कोई इसे छोटे शंखसे बदलने आवे तो बदल डालना। देखो, यह मेरी आज्ञा है कि फिर छोटा शंख किसीको मत देना।

शंकर पण्डित वह बड़ा शंख लेकर घर आये। उनकी पत्नीने गोबरसे चौका लगाया। पाटेपर शंख रखकर पण्डितने उसकी पूजा की और हाथ जोड़कर बोले—'शंख देवता ! मुझे पाँच रुपये दीजिये।'

शंखसे बड़े जोरसे हँसनेका शब्द आया और फिर शंख बोला—'अरे पण्डित ! पाँच रुपये क्या माँगते हो, पाँच सौ तो कमसे कम माँगो।'

पण्डित बोले—'महाराज ! मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मणको लोभ नहीं करना चाहिये। आप मुझे पाँच रुपया दे दें।'

शंख बोला—'ना, ना, मैं पाँच रुपये नहीं दूँगा। यह तो बहुत छोटी बात है। पाँच हजार माँगो, पाँच लाख माँगो।'

बनिया तो शंकर पण्डितके मन्दिरसे लौटते ही उनके घर आ गया था। पण्डितके हाथमें बड़ा भारी शंख देखकर वह छिपकर सब बातें देख-सुन रहा था। शंखकी बात सुनकर उससे रहा नहीं गया। उसने सोचा—'इतना धन देने वाला शंख ही लेना चाहिये।'

बनिया झटपट आगे आया और शंकर पण्डितको प्रणाम करके बोला—'पण्डितजी! आपको इतने रुपये तो चाहिये नहीं। यह शंख आप मुझे दे दें। कल वाला आपका छोटा शंख मैं लौटा देता हूँ।'

शंकर पण्डित बोले—'हाँ भाई, मेरे लिए तो वह छोटा शंख ही बहुत है। लेकिन मैं फिर वह शंख तुम्हें नहीं दूँगा। मुझे भगवानने मना किया है।'

बनिया बोला—'मैं आपसे वह शंख फिर माँगूँगा भी नहीं।'

दौड़ा-दौड़ा बनिया घर गया और छोटा शंख ले आया। छोटे शंखको लेकर शंकर पण्डितने बड़ा शंख उसे दे दिया।

बनिया घर आया। गायके गोबरसे भूमि लीपकर उसपर पाट रखकर पाटेपर उसने रेशमका वस्त्र बिछाया। उस वस्त्रपर शंख रखकर उसने शंखपर चन्दन, फूल, अक्षत चढ़ाये। धूप दी, बत्ती जलायी, पेड़ेका भोग लगाकर कपूरकी आरती की।

पूजा करके हाथ जोड़कर बनिया बोला—'शंख महाराज! आप बड़े दयालु हैं। मुझे कृपा करके पचास रुपये दे दीजिये।'

शंख हँसा और बोला—'बस पचास रुपये ! यह तो बहुत थोड़ा है। कुछ तो अधिक माँगो।'

बनियेने उत्साहसे कहा—'महाराज ! मैंने तो सङ्कोचसे पचास रुपये माँगे थे। आप पाँच सौ रुपये दे दें तो बड़ी कृपा हो।'

शंखने कहा—'नहीं, अभी भी तुम सङ्कोच करते हो। पूरा धन माँगो।'

बनिया तो आनन्दके मारे झूम उठा। वह कहने लगा—'आप जैसे दातासे मैं सङ्कोच क्यों करूँ। मुझे आप पाँच हजार रुपये दे दें।'

शंखने फिर कहा—'अरे भाई ! कुछ तो अधिक माँग। यह क्या पचास, पाँच सौ, पाँच हजारकी रट लगा रखी है।'

अब बनिया बोला—'जैसी आपकी इच्छा। आप पचास हजार दे दें...।'

लेकिन इस बार शंखने उसे बीचमें ही रोका—'नहीं। नहीं। इतना थोड़ा नहीं। अधिक—खूब अधिक माँगो।'

झुँझलाकर बनिया बोला—'तो पाँच लाख, पचास लाख, पाँच करोड़, पचास करोड़, पाँच अरब, पचास अरब—आपके जो मनमें आवे, उतना ही दीजिये।'

शंख इस बार बड़े जोरसे हँसा। वह बोला—'बस ! इतनी ही संख्या तुमने पढ़ी है ? मुझे बड़ा अच्छा लगता है। तुम माँगते चलो। बड़ी-बड़ी संख्या बोलते चलो।'

बनिया घबड़ाकर बोला—'लेकिन महाराज ! आप मुझे देंगे कितना ? आप अपने मनसे ही जितना देना चाहें, उतना दे दीजिये।'

शंख तो हँसते-हँसते लुढ़कने लगा। वह पाटेसे नीचे लुढ़क गया। इधर लुढ़का, उधर लुढ़का। कोनेमें लुढ़का, बरामदेमें लुढ़का। हँसते-हँसते, लुढ़कते-पुढ़कते वह बोला— 'अरे भैया! रुपया देने वाला तो छोटा शंख था। मेरा काम देना नहीं है। मैं तो बस देनेकी बात कहता हूँ। मेरा नाम है डपोरशंख—समझे?'

शंख तो लुढ़कतां-लुढ़कता बनियेके घरसे बाहर निकल गया। बनिया उसके पीछे दौड़ा; परन्तु अब वह शंख उसकी पकड़में आने वाला नहीं था। दौड़ते-दौड़ते बनिया थक गया। हाँफने लगा। गिर पड़ा धम्से। शंख कहाँ गया, यह उसे फिर पता नहीं लगा। शंकर पण्डितने तो उसे पहिले ही मना कर दिया था कि छोटा शंख नहीं देंगे।

लालच करनेसे बनियेके हाथसे छोटा शंख भी चला गया।

उस दिनसे जो लोग किसीको कुछ देनेकी बात कहके पीछे अस्वीकार कर देते हैं, उन्हें लोग डपोरशंख कहते हैं। तुम किसीको कोई सहायता देनेका वचन दो तो उसे अवश्य पूरा करो, नहीं तो तुम भी डपोरशंख कहे जाओगे।

मैं परदेशी हूँ

एक नगरमें दो जिद्दी मनुष्य रहते थे। दोनों इतने जिद्दी थे कि जो बात एक बार उनके मुँहसे भूलसे भी निकल जाय, उसीको सच्ची बतानेका हठ पकड़ लेते थे। उनमें-से एकका नाम था भोंदूमल और दूसरेका नाम था झब्बूलाल। दोनों ही झगड़ालू थे और मूर्ख थे। जिद्दी मनुष्य प्रायः मूर्ख होते हैं। अपनी हठको सच बतानेकी धुनमें सच बात क्या है, यह उनकी समझमें ही नहीं आता।

एक दिन भोंदूमल और झब्बूलाल अपने-अपने घरसे घूमने निकले। दोनोंमें मित्रता थी। दोनों बहुत बार साथ-साथ टहलने जाया करते थे। उस दिन थोड़ी दूर जानेपर भोंदूमल बोले—'चाँदनी रातमें, विशेषतः पूर्णिमाकी रातमें जब पूरा चन्द्रमा निकला हो, घूमनेमें बड़ा आनन्द आता है।'

झब्बूलालने कहा--'लेकिन इस समय तो चाँदनी रात है नहीं। हमलोग तो दिनमें टहलने निकले हैं। देखते नहीं कि सूर्य कितने ऊपर आ गये हैं। चलो जल्दी-जल्दी चलकर थोड़ी दूरसे लौट आवें, नहीं तो धूप तेज हो जायगी।'

भोंदूमल बिगड़कर बोले--'मैं कोई मूर्ख हूँ कि धूपमें टहलने निकलूँगा। इतना बड़ा पूरा चन्द्रमा निकला है और तुम उसे सूर्य बतलाते हो।'

झब्बूलालको हँसी आ गयी। वे हँसते हुए कहने लगे—'तुम्हें सूर्य और चन्द्रमाकी पहिचान भी मालूम नहीं। अरे भले आदमी ! सूर्यको चन्द्रमा मत कहो। कोई सुनेगा तो तुम्हें क्या कहेगा ?'

भोंदूमल क्रोधसे लाल हो गये। खड़े होकर उन्होंने पैर पटका और ऊपर मुँह करके हाथ उठाकर आकाशकी ओर दिखाते हुए बोले—'तुम इस चन्द्रमाको सूर्य कहते हो ? यह चन्द्रमा है चन्द्रमा। तुम किसी डाक्टरके पास जाकर दवा कराओ। बुद्धिका तुममें नाम नहीं है। और दूसरेको मूर्ख बताते हो।'

अब क्या था—दोनों मित्रोंमें झगड़ा होने लगा। एक चिल्लाकर कहता था—'यह सूर्य है।' तो दूसरा हाथपर घूसा मारकर कहता था—'चन्द्रमा है।' दोनों एक दूसरेको मूर्ख बताते थे।

'चलो किसीसे पूछ लो ! झगड़ा जब बढ़ गया, तब झब्बूलालने उसे पंचके द्वारा निर्णय करा लेनेकी बात कही।

भोंदूमल बोले—'यहाँके सब लोग मेरी ओर देख-देखकर हँस रहे हैं। ये सब मूर्ख हैं। तुम्हारे पक्षके हैं। किसी दूसरे शहरके मनुष्यसे पूछो तो पता लगे।'

झब्बूलालने कहा—'चलो स्टेशनपर चलें गाड़ीमें बैठे किसी सज्जनसे निर्णय करा लें।'

स्टेशन पास ही था। दोनों स्टेशनपर गये। उस समय एक गाड़ी आकर खड़ी थी। दोनोंने देखा कि गाड़ीके एक डिब्बेमें एक सज्जन बैठे हैं। वे खिड़कीसे बाहर देख रहे हैं। उनके

कपड़े उजले हैं। सिरपर बड़ी-सी पगड़ी है। घनी काली दाढ़ी बढ़ाये हैं। दोनोंने उन दाढ़ीवाले सज्जनसे निर्णय करानेका निश्चय किया। वे उनके सामने जाकर खड़े हो गये।

भोंदूमल बोले—'आप सज्जन पुरुष हैं। हम दोनों मित्रोंमें एक बातपर झगड़ा हो रहा है। आप हमारा निर्णय कर दें।'

झब्बूलालने कहा—'आप इतना ही बता दें कि आकाशमें इस समय सूर्य उगा है या चन्द्रमा।'

भोंदूमल झटपट बोले—'हाँ, आप यह बता दें कि आकाशमें वह गोल-गोल कौन है—चन्द्रमा या सूर्य?'

उन दाढ़ीवाले सज्जनने एक बार खिड़कीसे सिर निकाला, ऊपर देखा और ऐसा गम्भीर मुँह बनाया, जैसे कोई बहुत बड़ी बात कहने जा रहे हैं। फिर वे बोले—'भाई! मैं क्या जानूं। मैं तो परदेशी हूँ।'

उनकी बात सुनकर उस डिब्बेमें जितने मनुष्य बैठे थे, सबके सब हंसने लगे।

बिना समझे कोई बात योंही कह देनेसे मनुष्यकी ऐसे ही हँसी होती है और उसे लोग मूर्ख समझते हैं।

भोंदूमल और झब्बूलालको तो टिकट चेकरने पकड़ लिया। वे दोनों बहुत कहते रहे कि हम गाड़ीमें नहीं आये हैं, लेकिन उनकी बात नहीं सुनी गयी। उनपर बिना टिकट रेलसे यात्रा करनेका अपराध लगा और उन्हें जुरमानेके रुपये देने पड़े।

तुम जानते हो कि भोंदूमल और झब्बूलालने कौन-सी भूल की थी? वे दोनों बिना प्लेटफार्मका टिकट लिए स्टेशनके भीतर चले गये थे। तुम्हें यदि किसीको गाड़ीपर पहुँचाने या किसी आनेवालेसे मिलने स्टेशनके भीतर जाना पड़े तो प्लेट-फार्म टिकट लेकर ही जाना।

इस कहानीमें तीन बातें समझ लेने की हैं—१. अपनी बातकी जिद करनेसे अनेक बार बहुत बड़ी भूल होती है और लोग मूर्ख समझते हैं। इसलिए जिद न करके दूसरेकी बात सुनना चाहिये और वह ठीक हो तो अपनी भूल झटपट मान लेना चाहिये।

२. बिना सोचे योंही कुछ नहीं बोल देना चाहिये। ऐसा करनेसे अपनी हँसी होती है। सोच समझकर ही कोई बात मुँहसे निकालना चाहिये।

३. स्टेशनके प्लेटफार्मपर टिकट या प्लेटफार्म-टिकट लेकर ही जाना चाहिये। बिना टिकट भीतर जानेसे पकड़े जानेका भय रहता है।

गुरु घण्टाल

एक सियार एक दिन घूमता-घामता एक मन्दिरमें पहुँच गया। मन्दिरमें सियारको और कुछ तो मिला नहीं, एक घण्टा मिल गया। घण्टेको मुँहमें दबाकर वह अपनी माँदमें ले आया। एक पत्थरके टुकड़ेसे सियारने घण्टेको बजाया। घण्टा टन-टन बजने लगा। सियार बड़ा प्रसन्न हुआ।

दूसरे दिन बड़े सबेरे सियार अपनी मांदमें-से निकला। जो कोई जानवर उससे मिलता था, उसीसे वह कहता था—'वनके देवताने मुझे इस वनके पशुओंका गुरु बनाया है। उन्होंने मुझे मन्त्र दिया है—

गड़बड़ गिल्ला गड़ाम्। भइयाँ भू भड़ाम्।
झावर झल्ला झन्। टन् टनाटन् टन्॥

उसने वनके पशुओंसे यह भी कहा कि वनके देवता आकर उसकी माँदमें बैठे हैं। वे कहते हैं कि जो वनके गुरुकी आज्ञा नहीं मानेगा, उसे वे मार देंगे।

शेर, चीता, रीछ, भेड़िया आदि सब सियारकी माँदपर आये। सियारने माँदमें जाकर घण्टा बजा दिया। सब पशुओंने समझा कि वनके देवता बोल रहे हैं। उन्होंने सियारको अपना गुरु मान लिया। अब सियार सब जानवरोंपर रोब जमाने लगा। वह सबको आज्ञा देता था। सब जानवर उसको प्रणाम करते थे और उसकी आज्ञा मानते थे।

उस वनमें एक बूढ़ी लोमड़ी रहती थी। एक दिन वह सियारके पाससे निकली। लोमड़ीने सियारको प्रणाम नहीं किया। सियार बिगड़कर बोला—'गड़बड़ गिल्ला गड़ाम्। कर लोमड़ी प्रणाम।'

लोमड़ी बोली—'अरे भतीजे! तू अपनी बुआको ही प्रणाम करनेको कहता है?'

सियार कूदा और पूँछ घुमाकर गुर्राता हुआ बोला—'तू जानती नहीं, मैं जङ्गलका गुरु हूँ? तू मेरी बुआ बननेका साहस करती है? झाबर झल्ला झन्। टन् टनाटन् टन्।'

सियार माँदमें घुसकर घण्टा बजाने लगा। लोमड़ी भी गाँवमें जाती थी। उसने घण्टेका शब्द सुना था। वह जान गयी कि सियारने माँदमें घण्टा छिपा रखा है। लोमड़ी दौड़ी हुई जङ्गलके राजा शेरके पास गयी और बोली—'महाराज! यह सियार आपको ठगकर जङ्गलका गुरु बना है। यह गुरु नहीं, गुरु-घण्टाल है। आप मेरे साथ चलें तो मैं इसकी माँदसे घण्टा निकाल दूँ।

शेर लोमड़ीके साथ सियारकी माँदपर आया। सियारको शेरने माँदसे बाहर खड़ा रहनेको कहा। सियार डर गया। वह माँदमें घुस भी जाता तो शेर भेड़ियेको कहकर उसे माँदमें-से पकड़ मँगाता। लोमड़ी सियारकी माँदमें घुस गयी और घण्टा बाहर ले आयी।

शेरने घण्टा देखा, सूँघा, पंजेसे बजाया। फिर वह सियारसे बोला—'गुरुजी! आपको गुरु-दक्षिणा भी तो लेनी चाहिए।'

शेरने एक थप्पड़ सियारको मारा। सियारकी नाक चिथड़े हो गयी। उसका एक कान आधे मुँह और एक आँखके साथ उड़ गया। शेरने वह घण्टा सियारके गलेमें बंधवा दिया। जङ्गलके पशु उस काने सियारको गुरु-घण्टाल कहकर चिढ़ाया करते थे।

जो लोग अपना स्वार्थ साधनेके लिए दूसरोंको ठगते हैं, उन धूर्त लोगोंको गुरु-घण्टाल कहकर लोग चिढ़ाते हैं। जब उनकी धूर्तताका भेद खुलता है तो उनकी भी धूर्त सियारके समान ही दुर्दशा होती है।

गड़बड़ चौथ

नगरसे दूर एक छोटा-सा गाँव था। उस गाँवके पास न कहीं रेलका स्टेशन था, न पक्की सड़क थी। उस गाँवमें बहुत-से घर अहीरोंके ही थे। वे लोग गाय-भैंस पालते थे और खेती करते थे। उस गाँवसे दो कोसपर आठवें दिन मङ्गलवारको बाजार लगा करता था। वहींसे गाँवके लोग नमक, मसाला, कपड़ा आदि ले आते थे और अपने घरका घी, गुड़ आदि बाजारमें ले जाकर ही बेचते थे।

उस गाँवमें कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं था। गाँवमें भोलादत्त नामके एक ब्राह्मण रहते थे। गाँवके लोग उन्हें भोला पंडित कहते थे। गाँवमें कोई तीज, चौथ, एकादशी, पूर्णिमाका व्रत करना चाहता, कोई पाठ-पूजा करनेको होता तो भोला पण्डितसे तिथि पूछ लिया करता था।

भोला पंडित भी पढ़े-लिखे नहीं थे। उनके पास पता नहीं किस समयका पुराना पञ्चांग था। लेकिन भोला पंडित उसे पढ़ नहीं सकते थे। उन्होंने तिथि बतानेका एक दूसरा ही उपाय कर रखा था। लकड़ीके पन्द्रह डंडे बनवाकर उन्होंने अपने घरके एक कोनेमें रख दिये थे। नित्य प्रातः उनमें-से एक डंडा उठाकर दूसरे कोनेमें रख देते थे। जब कोई तिथि पूछने आता तो जाकर गिनते थे कि दूसरे कोने- में कितने

डंडे रखे हैं। उनको गिनकर तिथि बता देते थे। जब पन्द्रहों डण्डे एक कोनेमें पहुँच जाते, तब वे फ़िर उनमें-से एक-एक डण्डा रोज दूसरे कोनेमें रखने लगते थे।

एक दिन भोला पण्डितकी धर्मपत्नी गायके गोबरसे घर लीप रही थी। उन्होंने लीपते समय घरके दोनों कोनोंमें रखे सब डण्डोंको इकट्ठा करके एक ओर भूमिपर रख दिया। इतनेमें कोई अहीर भोला पण्डितसे तिथि पूछने आया। पण्डित घरमें डण्डे गिनने आये। सब डण्डे भूमिपर पड़े देखकर वे पत्नीपर
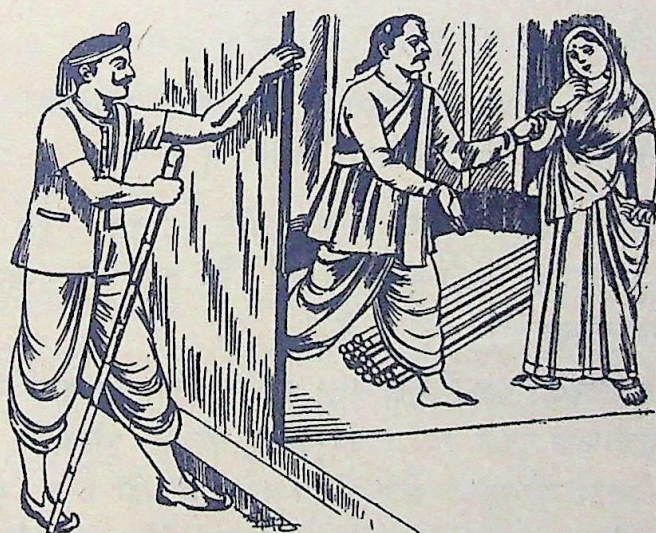
बहुत झल्लाये। पत्नी बेचारी जानती नहीं थी। वह सहमी-सी रह गयी। इधर दरवाजेपर-से वह अहीर पुकार रहा था। उसे खेतपर जानेकी जल्दी थी। इधर कई दिनोंसे कोई पण्डितसे तिथि पूछने नहीं आया था, इसलिए उन्होंने डण्डे गिने भी नहीं थे। अब बहुत याद करनेपर भी उन्हें यह याद नहीं आया

कि कोनेमें कल कितने डण्डे थे। वे बाहर आये और अहीरसे बोले—'भैया! आज तो गड़बड़ चौथ है।'

अहीरकी समझमें बात नहीं आयी। उसने पूछा—'महाराज! कल कौन तिथि होगी?'

भोला पण्डित बोले—'कल तो एकम (प्रतिपदा) होगी।'

अहीर—'महाराज! चौथके बाद तो पंचमी होती है, एकम कैसे होगी?'

भोला पण्डित—'भैया! गड़बड़ चौथके बाद एकम ही होती है।'

अहीर—'लोग तो कहते हैं कि परसों दिवाली है और आप अभी चौथ और एकम ही बताते हैं।'

भोला पण्डित क्रोधमें आकर बोले—'तुम अहीर क्या जानो। दीवाली परसों हो या तरसों, मेरे घरमें तो पण्डितानी-ने आज गड़बड़ चौथ कर दी है।'

अहीरकी समझमें कुछ बात आयी नहीं। वह दूसरे गाँवके पण्डितके पास पूछने गया। जब दूसरे गाँवके पण्डितने ठीक तिथि बतायी तो गाँवके लोग भोला पण्डितके यहाँ आये। अन्तमें भोला पण्डितका सब भेद खुल गया। अहीरोंने उन्हें गाँवसे ही निकाल दिया।

तुम भी इस कहानीसे यह बात याद कर लो कि जो बात तुम्हें नहीं आती, उसके विद्वान् मत बनो। नहीं तो भेद खुलने-पर बड़ी हँसी होगी।

मनके लड्डू

एक लड़का था। उसकी अवस्था बीस वर्ष हो गयी थी। उसका नाम था सुबोधचन्द। लेकिन नामसे तो कोई काम होता नहीं। मनुष्यमें गुण होना चाहिये। सुबोधचन्द बहुत थोड़ा पढ़ा था, लेकिन था बहुत घमण्डी। वह अपनेसे अधिक बुद्धिमान किसीको समझता ही नहीं था।

सुबोधचन्दके घरमें उसकी माताको छोड़कर दूसरा कोई नहीं था। उसकी माता दूसरोंके कपड़े सीती और आटा पीसती। इससे वह अपना और अपने बेटेका पालन करती थी। सुबोधचन्द बातें बहुत बनाता था। दिनभर बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाया करता था; किंतु उससे परिश्रम नहीं होता था। कोई छोटा-मोटा काम करनेमें वह अपना अपमान समझता था। वह सदा मनमें सोचता रहता और दूसरोंसे भी कहता था कि वह खूब बड़ा आदमी बनेगा। लोग उसकी बातोंपर ध्यान नहीं देते थे। कुछ लोग उसे चिढ़ाया करते थे।

एक बार सुबोधचन्द्रकी माता बीमार पड़ी। सुबोधके घर एक गाय थी। उसकी माताने थोड़ा-थोड़ा करके गायका घी बचाया था। एक हँड़िया घी इकट्ठा हो गया था। माताने सुबोधचन्द्रसे कहा— 'बेटा! मैं बीमार हूँ। कोई काम नहीं कर सकती हूँ। तू घी बाजार ले जाकर बेच आ और उसके पैसेसे आटा-दाल ले आ।'

सुबोधचन्द्रको माताकी बात पसन्द तो नहीं आयी, उसे घी बेचने बाजार जाना बुरा भी लगा, लेकिन घरमें न आटा था, न दाल थी। उसे अपने भोजनकी भी चिन्ता थी। इस-लिए माताकी बात मानकर वह घीकी हँड़िया लेकर बाजारको चला।

बाजार जाते समय रास्तेमें सुबोधचन्द्र सोचने लगा—'इतने घीके दो रुपये मिल जायँगे। आठ आनेका आटा और चार आनेकी दाल लूंगा। सवा रुपये बचेंगे। उनके पटाखे बनाने-का सामान लूंगा और पटाखे बनाऊँगा। मेरे पटाखे झटपट बिक जायँगे। मुझे तीन गुना लाभ होगा। मैं पटाखेकी दूकान खोल लूंगा। मेरी दूकानमें सबसे अच्छे पटाखे बनेंगे। बड़े-बड़े लोग मुझसे पटाखे लेंगे। मुझे खूब धन मिलेगा। एक पक्का मकान बनाऊँगा। एक बगीचा लगवाऊँगा। बड़ी धूम-धामसे मेरा विवाह होगा। थोड़े दिनोंमें मेरी स्त्रीको बच्चा होगा। अपने पहिले बच्चेके जन्मका उत्सव मैं बड़े धूम-धामसे मनाऊँगा। बड़े-बड़े लोगोंको बुलाऊँगा उस उत्सवमें। उस उत्सवके लिए मैं खूब बड़ा पटाखा बनाऊँगा। इतना बड़ा पटाखा जो घड़ेसे भी बड़ा होगा। वह तोपसे भी जोरका शब्द कर सकेगा। जब सब लोग उत्सवमें आ जायँगे, तब मैं अपने बगीचेके बीचमें अपने हाथसे पटाखेको पटकूंगा...।'

पटाखेको पटकनेकी बात मनमें आते ही सुबोधचन्द्रने अपने हाथमें जो घीकी हँड़िया थी, उसे पटक दिया। भड़ामसे हँड़िया फूट गयी। गर्मीके दिन थे। घी पिघला हुआ था। वह भूमिपर चारों ओर फैल गया। बेचारा सुबोधचन्द्र हक्का-बक्का

ऊँचा आदर्श रखना तो बहुत उत्तम है; किंतु केवल बड़ी-बड़ी बातें सोचते रहना, लम्बी डींगे मारना अच्छा नहीं है। ऐसे लोग निकम्मे हो जाते हैं। परिश्रमी बनना चाहिये। बड़ा काम वही कर सकता है जो छोटे कामोंको भी पूरी साव-धानी, तत्परता और परिश्रमसे करता है। जो केवल मनके लड्डू खाया करता है, उसकी हानि होती है और दूसरे लोग भी उसकी हँसी उड़ाते हैं।

दो पैरकी बिल्ली

डाक्टर उमाशङ्करजी एक अच्छे नगरमें सरकारी डाक्टर थे। वे स्वभावके बहुत अच्छे थे, लेकिन उनका नौकर बुधई बहुत धूर्त था, वह डाक्टर साहबकी कोई-न-कोई वस्तु अवसर पाते ही चुरा लिया करता था। बुधईका घर पास ही था। वह चोरीकी वस्तु झटपट अपने घर पहुँचा देता था।

बुधई बहुत चटोर था। वह कोई भी स्वादिष्ट भोजनकी वस्तु देखता तो उसमें-से कुछ-न-कुछ निकालकर चोरीसे खा लिया करता था। डाक्टर उमाशङ्करजी सबेरे आधापाव जलेबी मँगाते थे। हलवाईकी दूकान पास थी। हलवाईका नौकर गरम-गरम आधा पाव जलेबी डाक्टर साहबके यहाँ पहुँचा जाता था। डाक्टर साहब अपने हाथसे घरके लोगोंको उसमें-से जलेबियाँ बाँट देते थे। वे बुधईको भी एक जलेबी दे दिया करते थे। अपने लिए दो जलेबियाँ रख लेते थे।

डाक्टर उमाशङ्करजी प्रातः काल टहलने जाया करते थे। सबको जलेबियाँ बाँटकर, अपने लिए दो जलेबी रखकर वे टहलगे चले जाते और टहलकर लौटनेपर दोनों जलेबियाँ खाकर दूध पी लेते थे।

बुधई चोर भी था और चटोर भी। एक जलेबी खा लेनेसे उसे संतोष नहीं होता था। जब डाक्टर साहब टहलने चले जाते, तब वह उनकी जलेबियोंके दोनोंमें जो चीनीकी चाशनी पड़ी

होती , उसे अँगुलीसे हथेलीपर निकाल लेता और चाट जाता। डाक्टर उमाशङ्करजी प्रतिदिन लौटनेपर देखते कि उनकी जलेबियाँ सूखी जैसी हैं। पूछनेपर बुधई कहता— 'बिल्लीने चाशनी चाट ली।'

बिल्ली प्रतिदिन चाशनी चाट जाय और जलेबियाँ छोड़ जाय, यह बात विश्वास करने योग्य नहीं थी। एक दिन डाक्टर साहबने टहलने जानेसे पहिले अपनी जलेबियोंपर जुलाबकी दवा डाल दी और टहलने चले गये। बुधईको यह

पता नहीं था कि आज जलेबियोंपर दवा पड़ी है। वह नित्यके समान उसकी चाशनी चाटगया। जब डाक्टर साहबने लौटकर पूछा तो वह सदाकी भाँति बोला— 'बिल्लीने चाशनी चाट ली।'

डाक्टर उमाशङ्करजीने हँसकर पूछा— 'बिल्ली चार पैर की थी या दो पैरकी ?'

बुधई बोला — 'दो पैरकी बिल्ली कैसे होगी। बिल्ली तो चार पैरकी होती है।'

डाक्टर साहब बोले— 'मुझे तो लगता है कि दो पैरकी बिल्ली ही मेरी जलेबियोंकी चाशनी प्रतिदिन चाट जाती है।

वह बिल्ली भी नहीं, बिल्ला है। लेकिन आज उसे भी पता लगेगा।'

थोड़ी देरमें बुधईका पेट गुड़-गुड़ करने लगा। उसे टट्टी लगी। बार-बार टट्टी लगने लगी। भागकर वह अपने घर गया। लेकिन उसे टट्टी होना बन्द ही नहीं होता था। उसका शरीर दुर्बल हो गया। उसकी स्त्री घबड़ायी हुई डाक्टर साहबके पास आयी। डाक्टर साहबने कहा—'मैं मनुष्योंकी दवा करता हूँ। बिल्ली या बिल्ले की दवा मैं नहीं करता।'

बुधईकी स्त्री रोने लगी। डाक्टर साहबको दया आ गयी। उन्होंने दवा दे दी। जितनी वस्तुएँ चुराकर बुधई घर ले गया था, वे सब वस्तुएँ उसकी स्त्रीने डाक्टर साहबको लौटा दीं। लेकिन डाक्टर साहबने बुधईको नौकरीसे निकाल दिया। वे बोले—'मुझे बिल्ली पालनी होगी तो चार पैरकी बिल्ली पालूँगा। दो पैरकी बिल्ली नहीं चाहिये।'

चोरी करना बुरा है और चटोर होना उससे भी बुरा है। जो चटोरपनेके कारण स्वादिष्ट पदार्थ चोरीसे खाता है, एक-न-एक दिन वह अवश्य पकड़ा जाता है। उसकी बहुत दुर्गति होती है। मनुष्य होकर बिल्लीके समान चटोर होना बुरी बात है।

गणेशजी और चतरीलाल

एक गाँवमें मनोहर पण्डित नामके एक ब्राह्मण रहते थे। वे गणेशजीके बड़े भक्त थे। गाँवके बाहर एक तालाब था। तालाबके किनारे एक गणेशजीका मन्दिर था। मनोहर पण्डित प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल वहाँ जाकर तालाबमें स्नान करके गणेशजीकी पूजा करते थे।

मनोहर पण्डितके घरमें उनकी स्त्री थी और लड़की थी। लड़कीकी अवस्था ब्याह करनेकी हो गयी थी। मनोहर पण्डित-की स्त्री बार-बार कहती थी— 'बेटी सयानी हो गयी है। अब इसके ब्याहकी चिन्ता करो। इसके लिए कहीं लड़का ढूंढ़ो और कुछ रुपये जुटाओ।'

मनोहर पण्डित कहते थे— 'मैंने अब तक तो कभी किसी-के आगे हाथ फैलाया नहीं। मेरे स्वामी तो गणेशजी हैं। उनका सेवक बनकर मैं दूसरे किसीसे भीख नहीं माँगूगा। उनको जो करना होगा, करेंगे। वे क्या मेरी बेटीके ब्याहके लिए पाँच सौ रुपये नहीं दे सकते।'

बात सच्ची थी। मनोहर पण्डितने कभी किसीसे कुछ माँगा नहीं था। वे न खेती करते थे, न नौकरी। उनकी कोई यजमानी भी नहीं थी। लेकिन गाँवके लोग उनका बहुत आदर करते थे। लोग उन्हें गणेशजीका भक्त समझकर उनके घर

आटा, दाल आदि पहुँचा जाते थे। उनको बिना माँगे लोग थोड़ी बहुत दक्षिणा भी दे जाते थे। लेकिन मनोहर पण्डितकी स्त्रीको यह नहीं लगता था कि बिना माँगे कोई पाँच सौ तो क्या, पचास रुपये भी देगा।

उस गाँवमें चतुरीलाल नामका सबसे धनी व्यापारी रहता था। चतुरीलाल सचमुच बहुत चतुर था और बहुत कंजूस भी था। उसने बड़ी भारी हवेली बनायी थी। उसके दरवाजेपर पक्का कुआँ था। खूब बड़ी थी उसकी दूकान। दूकानमें कई नौकर थे। लेकिन वह इतना कृपण था कि भिखारीको दो मुट्ठी अन्नकी भीख भी नहीं देता था।

चतुरीलाल भी प्रतिदिन दोनों समय गणेशजीकी पूजा करने जाता था। सबेरे तो वह तालाबमें स्नान करता, तालाबका एक लोटा जल और वहीं लगे कनेरके पेड़के दो-चार फूल गणेश-जीको चढ़ा देता, लेकिन शामको गणेशजीके पास एक छोटा दीपक अवश्य जला दिया करता था। उसे किसीने बता दिया था कि गणेशजीकी पूजा करनेसे बहुत धन मिलता है। रुपयेके लोभसे ही वह गणेशजीकी पूजा करता था।

एक दिन चतुरीलालको कहीं बाहर जाना था। उसने अपने नौकरको कह दिया था कि शामको वह गणेशजीके मन्दिरमें दीपक जला दे। चतुरीलाल रातमें देरसे लौटा। तालाब और गणेशजीका मन्दिर उसके मार्गमें पड़ता था। उसने सोचा कि आज सायंकाल पूजा नहीं की है, चलो गणेशजीके दर्शन करते चलें। लेकिन मन्दिरके पास आनेपर उसे लगा कि मन्दिरमें कोई बातचीत कर रहा है। चतुरीलाल छिपकर सुनने लगा।

मन्दिरमें कोई कह रहा था—'स्वामी ! मनोहर पण्डित आपका भक्त है। उसकी लड़की बड़ी हो गयी है। उसके विवाहके लिए बेचारेको पाँच सौ रुपये चाहिये। आप आज्ञा दें तो मैं बाहर वाले आलेमें पाँच सौ रुपये रख दूँ।'

गणेशजी बोले—'ऋद्धि देवी ! मनोहर पण्डित मेरा सच्चा भक्त है। वह लोभी नहीं है। उसे तो मैं भगवान्‌की भक्ति दूँगा। उसकी बेटीके ब्याहका प्रबन्ध भी मुझे करना है। भला पाँच सौ रुपयेमें उसकी बेटीका ब्याह कैसे होगा। मैं कल उसे उस बाहर वाले आलेसे ही एक सहस्र रुपये दूँगा।

मन्दिरकी बातचीत बन्द हो गयी। चतुरीलाल वहाँसे गाँवमें आया। उसके मनमें लोभ समा गया था। वह सोच रहा था—'मनोहर पण्डितकी बेटीका ब्याह तो पाँच सौ रुपयेमें भी हो जायगा। उसे पाँच सौ रुपये देकर सौदा करनेसे पाँच सौ रुपयोंका लाभ होगा।'

चतुरीलाल सीधा मनोहर पण्डितके घर पहुँचा। उसने उन्हें पुकार कर किवाड़ खुलवाये। बड़ी नम्रतासे प्रणाम करके बोला—'पण्डितजी ! आप गणेशजीके बड़े भक्त हैं। आपकी कन्या विवाहके योग्य हो गयी है। मुझे इसकी बड़ी चिन्ता है। मैं इसीलिए आज इतनी रातको आपके पास आया हूँ। पाँच सौ रुपयेमें आपकी पुत्रीका विवाह हो जायगा न ?'

मनोहर पण्डित बोले—'इतने रुपयोंमें कन्याका विवाह आनन्दसे हो जायगा।'

चतुरीलालने तुरन्त पाँच सौ रुपयेके नोट गिनकर दे दिये और बोला—'पण्डितजी ! आप तो गणेशजीके भक्त हैं। पता

नहीं गणेशजी आपको कब क्या देते हैं। थोड़ा-सा प्रसाद कृपा करके मुझे भी दीजिये। मन्दिरके भीतर आपको जो कुछ मिले, वह मैं नहीं चाहता। कल मन्दिरके बाहर वाले आलेमें जो कुछ मिले वह आप मुझे दे दें! मैं ही कल उसे उठाऊँगा।'

मनोहर पण्डित सरलतासे बोले—'भाई! मुझमें भक्ति कहाँ है। मेरे ऐसे भाग्य कहाँ हैं कि गणेशजी मुझे कोई प्रसाद दें। मन्दिरके बाहरवाले आलेकी ओर तो मैं कभी देखता ही नहीं। कल उसमें कुछ मिले तो वह तुम्हें ही गणेशजीने कृपा करके दिया, ऐसे ही समझना चाहिये।'

चतुरीलाल प्रसन्न होकर बोला—'बस, बात पक्की हो गयी। कल मन्दिरके बाहर वाले आलेमें जो मिले, वह मेरा।'

मनोहर पण्डितने कहा—'हाँ भाई! वह तो तुम्हारा ही होगा। मुझसे उससे कोई मतलब नहीं।'

लोभके मारे चतुरीलालको रातमें नींद ही नहीं आयी। दूसरे दिन सबेरे वह उठा। अँधेरेमें ही तालाबपर जाकर उसने स्नान किया। मन्दिरमें जानेपर बाहरवाले आलेमें अँधेरेके कारण कुछ है या नहीं, यह वह देख नहीं सका। उसने टटोलनेके लिए आलेमें हाथ डाला। लेकिन हाथ वहीं चिपक गया। चतुरीलालने जोर लगाकर खींचा, वह उछला-कूदा और छटपटाया, लेकिन हाथ नहीं छूटा।

उसी समय मन्दिरमें-से फिर बातचीतका शब्द आया। कोई कह रहा था—'स्वामी! आज मनोहर पण्डितको एक सहस्र रुपये देने हैं। आप आज्ञा दें तो मैं रुपयोंकी थैली बाहरवाले आलेमें रख दूं।

गणेशजी बोले— 'ऋद्धि देवी ! पाँच सौ रुपये मनोहर पण्डितको मैंने रातमें ही दिला दिये। अब आलेमें कंजूस चतुरीलाल-का हाथ चिपका दिया है। जब तक वह बाकी पाँच सौ रुपये भी पण्डितके घर नहीं भिजवायेगा, उसका हाथ नहीं छूटेगा।'

चतुरीलाल यह सुनकर चिल्लाया— 'गणेशजी महाराज ! आपकी पूजा करनेसे मुझे यही लाभ हुआ ! आप मेरी दुर्गति करेंगे, यह मैं कहाँ जानता था। अब तो आप मुझे क्षमा करो।'

मन्दिरसे गणेशजी बोले— 'तू मेरे साथ भी सौदा करता है ? तू क्या जानता है कि मैं पूजाका लोभी हूँ। मैं कंजूस, अधर्मी और लोभीकी पूजा स्वीकार नहीं करता। लेकिन तूने बहुत दिनों मेरी पूजा की है, वह व्यर्थ नहीं जायगी। उसके फलसे तेरा लोभ छूट जायगा।'

चतुरीलालका हाथ तभी छूटा जब उसने सबेरे नौकरके आनेपर पाँच सौ रुपये मनोहर पण्डितके घर भिजवा दिये।

भाँगका नशा

होलीका दिन था। पण्डित छक्कनलालने डटकर भांग पी। वैसे भी पण्डित छक्कनलाल नित्य ही थोड़ी-बहुत छान लिया करते थे; किंतु होलीके दिन तो उन्होंने भरपेट डटकर पी ली। बहुत लोग उन्हें मना कर रहे थे कि इतनी अधिक भाँग नहीं पीना चाहिये, लेकिन छक्कनलालने किसीकी बात नहीं मानी।

थोड़ी देरमें भाँगका नशा चढ़ा। पण्डित छक्कनलाल लगे जोर-जोरसे चिल्लाने और पागलोंकी भाँति जो मनमें आवे सो बड़बड़ाने और गाने। उन्होंने उठकर हाथ-पैर फेंकना और नाचना प्रारम्भ किया। बड़ी भारी तोंद वाले छक्कनलालको उछलते तथा नाचते देखकर सब लोग हँसने लगे।

नशेमें पण्डित छक्कनलालको चक्कर आने लगा। उन्हें लगा कि पृथ्वी घूम रही है। मकान भागे जा रहे हैं। एक खम्भेको दोनों हाथोंसे पकड़कर वे उससे चिपट गये और चिल्लाने लगे— 'कहाँ भागा जाता है? ठहर, ठहर, मैं तुझे भागने नहीं दूंगा। मेरे मकानमें-से निकल भागना चाहता है! अरे पकड़ो! कोई पकड़े इसे!'

लोगोंने छक्कन पण्डितको पकड़कर पलङ्गपर लिटा दिया। अब वे बार-बार चिल्लाने लगे— 'बाप रे बाप! मैं गिरा! मुझे बचाओ!' उन्हें लगता था कि कोई उनका पलङ्ग आकाशमें

उठा ले जाता है और फिर पटक देता है। मारे डरके पलङ्गको पकड़कर वे पेटमें दोनों घुटने मोड़े-सिकुड़े पड़े थे।

अचानक छक्कन पण्डितको नशेके झोंकमें जोश आ गया। वे पलङ्गसे कूद पड़े और गरजे— 'तू मुझे बार-बार पटकता है। मैं तेरी नाक तोड़ दूंगा।'
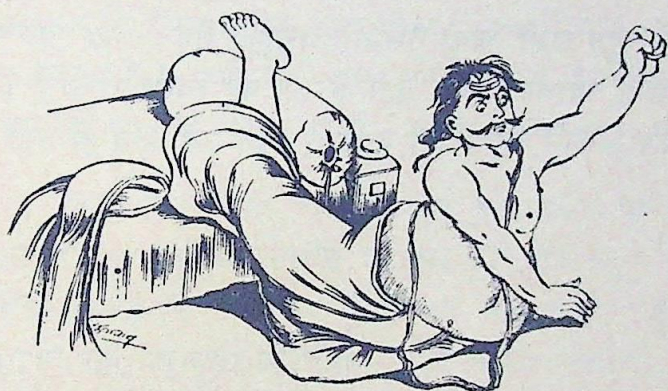
लेकिन बेचारे नाक किसकी तोड़ते। दीवारपर घूंसा मारकर गिर पड़े। उनकी तोंदमें बड़ी चोट आयी। उनकी आँखें लाल-लाल हो रही थीं। अपने हाथ और पैर नचाते, भूमिपर पड़े हुए वे बड़बड़ा रहे थे।

सब कहीं कुछ अच्छे दयालु लोग होते हैं। दो-तीन मनुष्योंने पण्डित छक्कनलालको पकड़कर फिर पलङ्गपर लिटाया। उनका मुख धोया। भाँगका नशा दूर करने वाली दवाइयाँ दीं। नीबूका रस पिलाया।

दूसरे दिन सबेरे पण्डित छक्कनलालका नशा उतरा। उन्हें लगता था कि सिर जोरसे दर्द कर रहा है। पूरा शरीर थककर

चूर-चूर हो गया है। उठने और चलनेमें भी उन्हें कष्ट हो रहा था। ऊपरसे लोग उन्हें कहते थे— 'पण्डितजी, नाचो तो सही।'

सभी नशे भाँगके समान ही हानिकारक होते हैं। वे मनुष्योंको पागल या बेहोश चाहे न बनावें; किंतु उसकी शक्तिको नष्ट करते हैं और उसे धीरे-धीरे रोगी बना देते हैं।

तुम कभी किसी नशीली वस्तुका सेवन मत करना। जो नशीले पदार्थका सेवन नहीं करता, वह स्वस्थ रहता है। उसकी बुद्धि ठिकाने रहती है। बहुत-से रोग उसे होते ही नहीं।
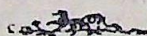
सरस सङ्गीत

एक गाँवमें एक धोबी रहता था। धोबीके पास कई गधे थे। उन सब गधोंमें एक गधा खूब मोटा था। उसे यह भ्रम हो गया था कि उसका स्वर बहुत मीठा है और वह बहुत सुन्दर गा सकता है। चाहे जब वह अपना गाना दूसरोंको सुनानेके लिए बड़े जोरसे 'चीपों, चीपों' करके रेंकने लगता था।

उस गधेका रेंकना धोबीको बहुत बुरा लगता था। क्योंकि उसका स्वर दूसरे सब गधोंसे भी बुरा और तेज था। दूसरे वह अवसर-कुअवसर न देखकर चाहे जब रेंकता ही रहता था। इसका फल यह हुआ कि धोबीको उस गधेके रेंकनेसे चिढ़ हो गयी थी। जैसे ही वह गधा रेंकना प्रारम्भ करता, धोबी डंडा लेकर आता और उसे पीटने लगता।

वह गधा दूसरे गधोंसे कहा करता था— हमारा स्वामी बहुत रूखे स्वभावका है। सङ्गीतसे तो उसे तनिक भी प्रेम नहीं। गायनकी कला उसे आती तो है नहीं, गायनको वह समझता भी नहीं। लेकिन तुम सब लोग चाहो तो मैं सङ्गीत सिखानेके लिए तुम्हें अपना शिष्य बना सकता हूँ।'

दूसरे गधे उससे कहते थे— 'भाई! तुम अपना संगीत अपने पास ही रखो। तुम्हारा संगीत सीखकर हमें धोबीके डण्डोंकी मार पुरस्कारमें नहीं लेनी है।'

वह गधा कहता था—'ये सब गधे मूर्ख हैं। गायनका महत्त्व ये तनिक भी नहीं समझते।'

एक दिन वह गधा बाजारके रास्ते जा रहा था। उसने देखा कि एक बड़ा-सा ऊँट खड़ा-खड़ा बलबला रहा है। गधा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे लगा कि आज बड़े भाग्यसे उसको एक अच्छा गवैया मित्र मिला है। वह ऊँटके पास गया और बोला—'गायनाचार्यजी ! आपका सङ्गीत तो अद्भुत है। लेकिन आप यहाँ अकेलेमें क्यों गा रहे हैं?'

ऊँट बोला—'क्या करूँ भाई ! संसारमें गवैये तो रहे नहीं, गायनका रस समझनेवाले भी नहीं रहे। इसलिए मैं अकेलेमें थोड़ा-सा गाकर अपना सन्तोष कर लेता हूँ।'

गधा बोला—'मैं भी गायक हूँ। हम दोनों मिलकर गायें तो ऐसा मजेदार सङ्गीत जमेगा कि जिसकी बात। इस बाजारके दूसरे सिरेपर किसीके यहाँ कोई उत्सव हो रहा है। बहुत लोग जुटे हैं। ये मनुष्य तनिक भी नहीं जानते कि संगीत कहते किसे हैं। कोई 'पीं पीं' करता है, कोई 'तुन् तुन्' बजाता है और कोई नन्हें झींगुरके समान स्वर निकालता है। आप मेरा साथ दें तो हम लोग आज सबको समझा सकेंगे कि सरस सङ्गीत कैसा होता है। बेचारेका उत्सव सफल हो जायगा।'

बाजारके दूसरे सिरेपर एक उत्सव हो रहा था। ख़ूब भीड़ थी। बड़े-बड़े गायक आये थे। मृदङ्ग, सितार, जलतरंग जैसे सुन्दर बाजे बज रहे थे। गवैये लोग बड़े सुन्दर स्वरमें भजन गा रहे थे।
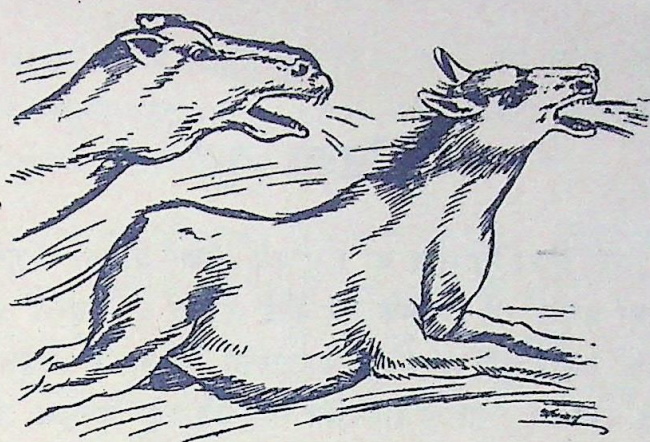
ऊँटको गधेकी बात पसन्द आ गयी थी। वह गधेके साथ चल पड़ा। ऊँट बलबलाने लगा और गधा जोर-जोरसे रेंकने लगा। उत्सवमें शीघ्र पहुँचनेके लिए दोनों दौड़ने लगे। दोनों भीड़में-से भीतर घुसना चाहते थे। दौड़ते बलबलाते ऊँट और रेंकते गधेको आते देख कुछ लोग भागने लगे। उत्सवमें गड़बड़ होने लगी। भला ऊँट और गधेके सरस संगीतके आगे उत्सवका संगीत कैसे चलता। लोगोंको उत्सवमें बाधा पड़नेसे बड़ा क्रोध आया। बहुत-से लोग लाठियाँ लेकर ऊँट और गधेपर टूट पड़े। मारके आगे दोनोंका संगीत भूल मया। वे वहाँसे भागे; किंतु उनपर इतनी मार पड़ी थी कि उस दिनसे उनका संगीत सुनानेका उत्साह ही घट गया। दोनों कहते हैं— 'मनुष्य बड़े मूर्ख होते हैं। वे जानते ही नहीं कि संगीत कहते किसे हैं। उन्हें गायन सुनाना ही व्यर्थ है।'

जो अपनी योग्यता न समझकर बहकता है और जो गुण अपनेमें नहीं है, उसे झूठे ही दिखाना चाहता है, उसकी ऐसी ही दुर्गति होती है।

मौतका दूत

एक छोटा-सा गांव था। गांवमें एक बुढ़िया रहती थी। बुढ़िया अकेली थी। उसके घर कोई लड़का या लड़की नहीं थी। गांवके बाहर बुढ़ियाका एक कटहलका पेड़ था। कटहलका पेड़ बहुत बड़ा था। उसमें ढाई-तीन सौ बड़े-बड़े कटहल प्रति वर्ष लगते थे। बुढ़िया उन कटहलोंको बेच डालती थी। कटहलोंको बेचनेसे मिले पैसोंसे ही बुढ़ियाका काम चलता था।

बुढ़िया कटहलके पेड़की रक्षाका पूरा प्रबन्ध करती थी। वर्षाके दिनोंमें कटहलकी जड़पर ऊँची मिट्टी डलवा देती थी। पेड़से कुछ हटकर चारों ओर चौड़ी नाली खुदवा देती थी, जिसमें वर्षाका जल भर जाता था। इससे कटहल खूब लगते हैं। जाड़े-के बीतनेसे पहिले ही कटहलके पेड़की जड़के चारों ओर कुछ दूर तक बबूलके कांटोंसे पेड़को भली प्रकार घेर दिया करती थी। क्योंकि सबसे बड़े कटहलके फल पेड़के तनेमें ही लगते हैं। यदि गाय, बैल या भैंस तनेको अपने देहसे रगड़ दें तो तनेमें फल देनेवाली टहनियाँ नहीं निकलतीं। बकरियाँ निकली टहनियोंको चर जाती हैं। इसलिए कटहलके तनेको पशुओंसे बचाना चाहिये।

जब कटहलमें छोटे-छोटे फल लगने प्रारम्भ हो जाते थे, तभी बुढ़िया उस पेड़के पास एक झोपड़ी डालकर उसीमें रहने लगती थी। गांवके और आस-पासके दुष्ट लोग रातको या दिन-

में चोरीसे उसके कटहल न तोड़ ले जायँ, इस कारण उसे सावधान रहना पड़ता था। गाँवसे बाहर अकेले झोपड़ीमें रहनेमें बुढ़ियाको तनिक भी डर नहीं लगता था।

लोग उस बुढ़ियाको चिढ़ाते थे कि 'वह झोपड़ीमें ही मर जायगी। मौतके दूत रातमें उसे पकड़ ले जायँगे।' लेकिन बुढ़ियाको डर तो लगता ही नहीं था। वह थोड़ा-बहुत बीमार भी रहती थी, बराबर खाँसती रहती थी, लेकिन उसे तो मरनेका भी भय नहीं था।

उस गाँवमें एक दुष्ट मनुष्य रहता था। वह बलवान था और उसके शरीरका रङ्ग भी काला था। उसका नाम कालू था। कालू चोर था। वह चोरीके अपराधमें जेलमें सजा भी काट चुका था। एक दिन कालूके मनमें आयी कि बुढ़ियाको डराकर रातमें उसके कुछ कटहल तोड़ लाना चाहिये। एक कटहल भी मिल गया तो उसका स्वादिष्ट शाक खानेको मिलेगा।

अँधेरी रात थी। आकाशमें थोड़े-थोड़े बादल होनेसे इतना अँधेरा हो गया था कि अपना हाथ भी नहीं दीखता था। कालूके कपड़े मैले थे, उसने जूता पहिन लिया था, जिससे कटहल तोड़नेमें पैरमें काँटे न चुभें। दबे पैर वह बुढ़ियाके कटहलके पास आया। बेचारी बुढ़िया बीमार थी। उसे वैसे भी नींद कम आती थी। उस दिन उसका शरीर दर्द कर रहा था। वह कराह रही थी और खाँस भी रही थी। बुढ़ियाकी झोपडीमें एक छोटा-सा दीपक जल रहा था। बुढ़िया झोपड़ीके दरवाजेपर ही पड़ी थी। कालू जब पेड़के पास पहुँचा तो बुढ़ियाको उसकी काली छाया कुछ दीख गयी। बुढ़ियाने पूछा— 'कौन है?'

कालू यह तो जानता था कि बुढ़िया जगी होगी। वह बुढ़ियाको डराकर कटहल लेने आया था। वह अपना स्वर बड़ा भयावना बनाकर बोला— 'मैं मौतका दूत हूँ। तुझे लेने आया हूँ।'

कालू समझता था कि बुढ़िया डर जायगी। वह प्राण बचानेकी प्रार्थना करेगी। फिर दस कटहल लेकर वह बुढ़ियाको छोड़कर लौट जायगा। लेकिन कालूकी बात सुनकर बुढ़िया एकदम उठ खड़ी हुई। वह झोपड़ीमें गयी। वहाँ एक मिट्टीकी हँड़िया रखी थी। उस हँड़ियामें बुढ़िया खिचड़ी बनाया करती थी। हँड़िया काली हो गयी थी। बुढ़िया वह हँड़िया और एक पतली छड़ी लेकर निकली। कालूको सावधान होनेका अवसर भी नहीं मिला, इतनेमें बुढ़ियाने उसके मुँहपर वह हँड़िया पटक दी। हँड़िया पटककर बुढ़िया छड़ी लिये पास आयी और कालू-को पीटने लगी।

मुँहपर काली हँड़िया भड़ामसे पड़ी थी। कालूका मुँह हँड़ियाकी कालिख लगनेसे और काला हो गया था। उसकी नाकसे रक्त बह रहा था। सिरमें भी चोट लगी थी। अब छड़ीकी मार पड़नेसे घबड़ाकर कालू चिल्ला उठा।

बुढ़ियाने कालूका स्वर अब पहिचान लिया। वह बोली—'अरे, तू तो कालू है। मैं तो जानती थी कि सचमुच मौतका दूत आया है। तुझे जानती तो भला अपनी हँड़िया क्यों फोड़ती। हाय, हाय, मुझे कल खिचड़ी बनानेके लिए दूसरी हँड़िया खरीदनी पड़ेगी।'

कालू बोला—'बूढ़ी दादी! तुझे मौतके दूतसे डर नहीं लगता।'

बुढ़ियाने कहा—'बेटा! मरना तो एक दिन है ही। मैं डरूँ किसलिए। मैंने सोचा कि मौतका दूत लेने आया है तो अब कल खिचड़ी बनानेको हँड़िया तो चाहिये नहीं, लाओ मरते-मरते मौतके दूतके मुँहपर उसे पटक ही दूँ।'

कालू अपनी नाकका रक्त पोंछते बोला—'लेकिन मेरी नाकका तो हलवा ही बन गया दीखता है, सो।'

बुढ़ियाने कहा—'अच्छा है, अब तुझे बुढ़ियाके कटहलकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

कालू अपना-सा मुंह लेकर लौट आया।

मौत तो एक ही बार आती है; किंतु मौतका दूत बार-बार आता है। भय ही मौतका दूत है। जो निर्भय होता है, उसके पास आनेमें मौतको भी भय लगता है।

बुद्धू

एक बाबूजीने एक देहाती नौकर रखा। नौकरका नाम था बुद्धू। बुद्धू परिश्रमी बहुत था, ईमानदार भी था, लेकिन था बुद्धू। ब्रह्माजीने उसे बुद्धि दी ही नहीं। जब तक कोई बात दस पाँच बार कहकर उसे समझा न दिया जाय, उसकी समझमें कुछ नहीं आता था। बाबूजीने उसे भली प्रकार समझा दिया कि उनके घरमें किस समय क्या काम करना पड़ेगा।

बुद्धू सबेरे झाड़ू देता, पानी भरता, बर्तन मलता, कपड़े धोता, भैंस दुहता, गोबर उठाता, भैंसको चारा डालता। इस प्रकार वह दिन भर काममें लगा रहता था। सब काम ठीक समयपर और ठीक-ठीक करता था। बाबूजी उसके कामसे बहुत प्रसन्न थे। लेकिन जब कोई नया काम बुद्धूको बताया जाता था, वह कोई-न-कोई भूल अवश्य कर देता था।

एक दिन बाबूजीके एक मित्र उनसे मिलने आये। बाबूजीने अपने मित्रको जलपान कराया। घरमें पान नहीं था, इसलिए उन्होंने बुद्धूको पुकारा। पुकारते ही बुद्धू सामने आकर खड़ा हो गया। बाबूजीने कहा— 'बाजारसे चार बीड़े पान ले आओ!'

उसी समय पासके बँगलेके पहरेदारने ६ बजनेका घण्टा बजाया। बुद्धू प्रतिदिन शामको ६ बजे भैंस दुहा करता था। उसने बाबूजीकी बात तो सुनी नहीं। अपनी धुनमें उसे लगा कि बाबूजी कहते हैं— 'भैंस दुह लाओ।' बस 'जी!' कहकर झटपट चला गया वहाँसे।

बड़ी देर तक बाबूजी बुद्धूके पान लेकर लौटनेकी प्रतीक्षा करते रहे। जब बुद्धू पान लेकर नहीं लौटा तो घरके एक लड़केको भेजकर उन्होंने पान मँगाया। बुद्धू लौटता तो कहाँसे। वह तो घरमें-से दोहनी लेकर भैंस दुहने चला गया था। जब भैंसका दूध लेकर वह लौटा तो बाबूजीने उसे डाँटा—'तू कहाँ चला गया था?'
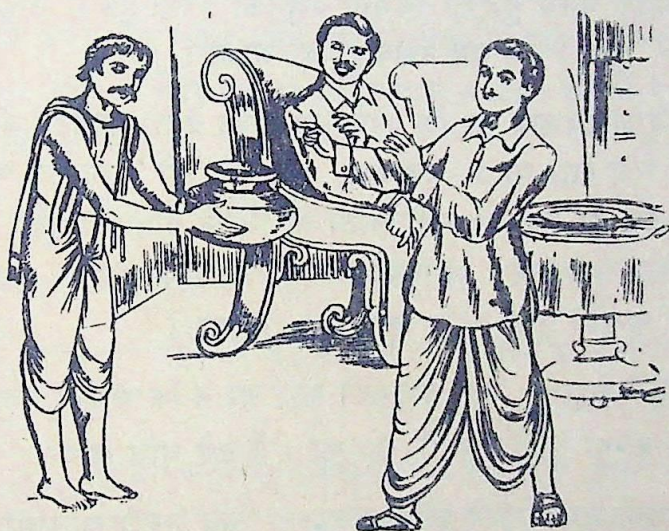
बुद्धूने भोलेपनसे कहा—'आपने मुझे भैंस दुहनेको कहा था न। मैं यह दूध ले आया।'

बाबूजीने कहा—'मैंने तो तुझे बाजारसे पान लानेको कहा था।'

बुद्धू बोला—'मुझे क्या पता। बगलके बंगलेमें छः-का घण्टा बजा। भैंस छः बजे दुही जाती है। मैंने समझा आप दूध मँगाते हैं।'

बाबूजीके मित्र हँसते-हंसते पूछने लगे—'यह कम सुनता है क्या ?'

बाबूजीने कहा—'सुनता तो ठीक है। काम भी ठीक करता है, पर है पूरा बुद्धू। जब तक कोई बात कई बार न कही जाय, इसकी समझमें ही नहीं आती।'

मित्रके मनमें बुद्धूका स्वभाव देखनेकी इच्छा हुई। उन्होंने कहा—'बुद्धू! तुम दूध रखकर यहाँ आओ।'

बुद्धूका स्वभाव था कि कोई कुछ आज्ञा दे तो झटपट 'जी' कहकर चल देता था। वह इस बार भी 'जी' कहकर चल पड़ा। जब देर तक वह नहीं लौटा तो मित्रने बाबूजीसे पूछा कि बुद्धू लौटा क्यों नहीं। बाबूजीने जोरसे उसे पुकारा। बुद्धूके आनेपर उन्होंने पूछा—'तू क्या कर रहा था ?'

बुद्धूने कहा—'इन बाबूजीने कहा था न कि भैंसका बच्चा बांधो। बच्चा अभी दूध पी रहा था। मैं उसे बांध आया।'

अबकी बार मित्रने हँसीमें कहा—'बुद्धू! स्टेशन जाओ!'

बुद्धूने झटपट कहा—'जी' और चलने लगा।

मित्र बोले—'स्टेशन जाकर क्या करोगे ?'

बुद्धू सिर झुकाकर गर्दन खुजलाते हुए सोचने लगा, फिर बोला—'भैंसको भूसा दूँगा।'

बाबूजी और उनके मित्र हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। उन्होंने फिर कहा—'बुद्धू! भैंसके पास मत जाओ! स्टेशन जाओ। वहाँ स्टेशन मास्टरसे माँग कर एक रेलगाड़ी ले आओ।'

बुद्धूने फिर बड़ी प्रसन्नतासे कहा— 'जी' और ऐसे चलने लगा, जैसे सब बात समझ गया हो और सचमुच स्टेशन जाने वाला हो। बाबूजीने उसे रोकना चाहा; किंतु उनके मित्रने कहा— 'जाने दीजिये। देखें तो कि यह करता क्या है।'

बुद्धूको इतना पता था कि जब घरमें कोई अतिथि आते हैं तो उनके लिए भी बड़े कमरेमें पलङ्ग बिछाया जाता है। वह घरमें गया और बड़े कमरेमें उसने पलङ्ग डालकर उसपर गद्दा बिछा दिया। फिर वह बाबूजीके पास आया। मित्रने पूछा— 'तुम रेल ले आये।'

बुद्धू बोला— 'जी !'

बाबूजीने झल्लाकर कहा— 'क्या जी ! क्या कर आया तू ?'

बुद्धू— 'जी, मैं बड़े कमरेमें पलंग डालकर उसपर गद्दा बिछा आया।'

अब तो बाबूजी और उनके मित्र बड़े जोरसे हँसने लगे। बेचारा बुद्धू उनकी ओर देखता रह गया। उसकी समझमें नहीं आता था कि ये लोग इतना क्यों हँस रहे हैं।

बुद्धू ऐसा बुद्धू क्यों था, जानते हो ? वह किसी बातको ध्यानसे नहीं सुनता था। तुम्हें जब अध्यापक पढ़ावें या घरके कोई गुरुजन तुमसे कुछ कहें तो उनकी बात ध्यानसे सुनो। यदि तुम उनकी बात ध्यानसे नहीं सुनोगे तो तुमसे भी भूल हो सकती है। भूल होनेपर तुम्हें भी लोग बुद्धू समझेंगे।

भयका भूत

भगेलू बहुत डरपोक था। उसकी बुढ़िया दादी उसे भूत, प्रत और चुड़ैलोंकी कहानी सुनाया करती थी। बुढ़िया दादीको पता नहीं था कि छोटे बालकोंको ऐसी कहानियाँ नहीं सुनानी चाहिये। इससे बच्चे डरपोक हो जाते हैं। भगेलू अँधेरा होते ही घबड़ाने लगता था। वह रातको दो क्षण भी अकेला पड़ जाय तो काँपने लगता था। उसके रोयें खड़े हो जाते थे। दोनों हाथोंसे आँखें बन्द करके वह चिल्लाने लगता था।

एक बार पाठशालामें कोई उत्सव था। लड़कोंको देरसे छुट्टी हुई। पाठशाला भगेलूके गाँवसे दो मीलपर थी। उस दिन भगेलूको घर लौटते समय अँधेरा हो गया। गाँवके दूसरे लड़के भगेलूके साथ नहीं आये थे। सब लड़के जानते थे कि भगेलू बहुत डरपोक है। वे उस दिन उसे चिढ़ाना चाहते थे। बेचारा भगेलू अकेला पड़ गया था।

रास्तेके दोनों ओर अरहरके घने खेत थे। एक मेड़पर ताड़के तीन-चार पेड़ थे। भगेलूको दादीने बताया था कि ताड़के पेड़पर एक बड़ा भारी भूत रहता है। यद्यपि अभी शाम ही हुई थी; किंतु थोड़ा अँधेरा हो गया था। अरहरके खेतोंके बीचमें अँधेरा और अधिक था। उन खेतोंके बीचमें चलते समय भगेलू थर-थर काँपने लगा। उसके रोयें खड़े हो गये। उसका शरीर पसीनेसे भीग गया। वह बार-बार चौंककर इधर-उधर देखता था और बहुत तेज चल रहा था।

ताड़के पेड़पर चीलका घोंसला था। चीलके पङ्ख हिलनेसे ताड़के पत्ते हिले। पत्तोंके हिलनेसे खड़-खड़का शब्द हुआ। भगेलूको लगा, भूत उसे पकड़नेके लिए ताड़पर-से नीचे उतर रहा है। वह मुट्ठी बाँधकर दौड़ पड़ा। ताड़की ओर देखनेका उसमें साहस ही नहीं था।

दौड़ते समय भगेलूकी चुटिया अरहरकी एक टहनीमें उलझ गयी। भगेलूने समझा कि भूत उसकी चुटिया पकड़कर खींच रहा है। वह जोरसे चीख पड़ा—'बाप रे!' और बेहोश होकर गिर पड़ा।

दूसरे लड़के, जो पाठशालासे चल पड़े थे और भगेलूको चिढ़ानेके लिए दूसरे रास्ते आ रहे थे, उन्होंने भगेलूकी चिल्ला-हट सुन ली। वे दौड़कर वहाँ आये। किसी प्रकार उन्होंने भगेलूको उठाया और उसके घर पहुंचाया। भगेलूको ज्वर आ गया था। ज्वरमें वह बार-बार 'भूत-भूत' कहकर चिल्लाता था। कई दिनोंमें दवा करनेपर ज्वर दूर हुआ।

भगेलूका एक मित्र था रघुनाथ। उसे भगेलूका डर छुड़ा देनेकी इच्छा थी। रघुनाथ बड़ा निर्भीक लड़का था। जब भगेलू अच्छा होकर पाठशाला आया तो रघुनाथने उससे कहा—'मित्र! मैं नहीं जानता था कि तुम इतना अधिक डरते हो। उस दिन मैंने तुम्हारा साथ इसलिए नहीं दिया कि अकेले जाने-से तुम्हारा डर कम पड़ेगा।'

भगेलू बोला—'रास्तेमें जो ताड़के पेड़ पड़ते हैं, उनपर एक बड़ा भूत रहता है। उस दिन उसने पीछेसे मेरी चोटी पकड़ ली थी।'

रघुनाथने समझाया—'तुम्हें भ्रम हो गया है। तुम्हारी चोटी तो अरहरकी एक टहनीमें उलझ गयी थी। तुम तो अपने मनके भयसे ही बीमार हुए थे।'

वहाँ मंगलराम नामका एक बड़ा लड़का भी बैठा था। मंगलरामका स्वभाव अच्छा नहीं था। वह दूसरे लड़कोंको डराया और चिढ़ाया करता था। उसने रघुनाथसे कहा—'तुम दूसरेको तो बहुत समझाते हो, लेकिन तुम स्वयं रातको उस ताड़के नीचे नहीं जा सकते। मैंने भी सुना है कि उसपर भूत रहता है और वह बहुत भयङ्कर तथा दुष्ट है।'

रघुनाथ बोला—'मैं रातको किसी समय वहाँ जा सकता हूँ।'

मङ्गलरामने कहा—'तुम डींग चाहे जितनी हाँको, जा नहीं सकते।'

रघुनाथने मङ्गलरामकी चुनौती स्वीकार कर ली। यह बात निश्चित हो गयी कि अगले शनिवारको जब पाठशालामें नाटक होगा, तब रघुनाथ ताड़के पेड़के पास रातमें जायगा और उसके नीचे जो नीले फूलकी विष्णुकान्ता लता उगी है, उसके चार ताजे फूल तोड़ लावेगा।

शनिवारके दिन पाठशालाके बालक नाटक खेल रहे थे। गाँवोंके भी बहुत लोग नाटक देखने आये थे। नाटक देखना छोड़कर फूल लेने जाना रघुनाथको अच्छा नहीं लग रहा था; किंतु अपनी बात उसे सच करके दिखानी थी। उसने इधर-उधर देखा; किंतु उसे वहाँ मङ्गलराम दिखायी नहीं पड़ा। थोड़ी देर

पहिले मङ्गलरामने फूल ले आनेकी याद दिलायी थी। रघुनाथ-ने मङ्गलरामके न दिखायी पड़नेपर भी अपनी लाठी ली, दूसरे बालकोंको बताकर वह फूल लेने चल पड़ा।

मंगलराम एक काला कपड़ा लेकर ताड़के पेड़ोंके पास पहिले पहुँच गया था और रास्तेके पास अरहरके खेतमें छिपकर बैठा था। उसने ताड़ोंके पेड़के पास एक मोटी लकड़ीके टुकड़ेको जला दिया था।

अँधेरी रात थी। रघुनाथ लाठी लिये चला आ रहा था। उसने दूरसे देखा कि ताड़के पेड़ोंके बीचमें बार-बार लपटें उठती हैं औंर बुझ जाती हैं। लेकिन रघुनाथ डरा नहीं। वह सीधा वहाँ आया, जहाँ आग जल रही थी। दुष्ट और चालाक मंगलरामने लकड़ीमें इस प्रकार आग लगायी थी कि पास जाने-पर भी अंगारे नहीं दीखते थे। हवा लगनेसे जब लपटें उठती थीं, तब वे लपटें ही दीखती थीं। रघुनाथने दो क्षण प्रतीक्षा की। वह वहाँ खड़ा रहा। जब लपटें उठीं तो रघुनाथने उस लपटपर ही एक लाठी जमा दी। लाठी लगनेसे लकड़ी लुढ़क गयी। अँगारे दीखने लगे। रघुनाथ समझ गया कि किसीने यहाँ लकड़ी जलायी है। वह विष्णुकान्ताके फूल उस जलती लकड़ीके प्रकाशमें देखकर तोड़कर लौट पड़ा।

रघुनाथको लौटते देखकर मङ्गलरामने काला कपड़ा ओढ़ लिया। वह रास्तेमें आकर हाथ-पैरके बल खड़ा होकर अपना देह हिलाने लगा। रघुनाथने उसे देखा। उसे लगा कि यह कोई जंगली पशु है और मेरे ऊपर आक्रमण करना चाहता है। रघुनाथने दोनों हाथोंसे लाठी उठाकर पूरे जोरसे धमक दी।
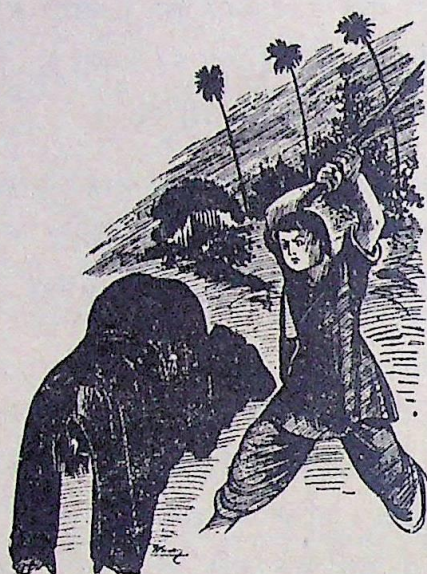
लाठी मंगलरामकी पीठपर पड़ी। वह गिर पड़ा और पीड़ा-से चिल्ला पड़ा। रघुनाथने उसका शब्द पहिचान लिया। वह लौट पड़ा। मंगलरामको बहुत चोट लगी थी। रघुनाथ किसी प्रकार उसे कन्धेका सहारा देकर पाठशाला तक ले आया।

मंगलरामकी चोट कई दिनोंमें अच्छी हुई। लेकिन पाठ-शालाके लड़के उसे चिढ़ाया करते थे। लड़कोंने उसका नाम—'मंगलभूत' रख दिया था।

तुम्हें भी रघुनाथके समान निर्भय होना चाहिये। भगेलू जैसे डरपोक बालक भयके भूतसे ही डरते रहते हैं और बीमार पड़ते हैं।

उलट पहाड़ा

जंगलका राजा सिंह कई दिनोंसे भूखा था। हिरन, खरगोश और दूसरे पशु बहुत चतुर हो गये थे। वे सिंहकी गन्ध मिलते ही दूर भाग जाते या छिप जाते थे। सिंहको कोई शिकार कई दिनोंसे नहीं मिला था। भूखा सिंह भोजनकी खोजमें घूम रहा था।

एक सियार अपनी माँदसे निकला। थोड़ी दूरपर बेरके पेड़ों-का झुरमुट था। बेर पके हुए थे। जाड़ेके दिन थे। चमकीली धूप निकली थी। सियार बेर खाने पेड़ोंके नीचे पहुँच गया। धूप उसे बहुत अच्छी लगी। बेर खूब मीठे लगे। वह बड़े मजेसे बेर खाने लगा।

सिंह घूमता हुआ उधर आया। उसने दूरसे सियारको देखा। उसने कहा— 'यह तो सियार है। इसका मांस बड़ा नीरस होता है। लेकिन आज यही सही। भूख बहुत लगी है। पेट तो भरना ही पड़ेगा।'

सिंह धीरे-धीरे पेड़के पास पहुँच गया। अचानक सियारकी दृष्टि सिंहपर पड़ी। उसके तो प्राण सूख गये। उसकी माँद दूर थी। वहाँ तक जानेका समय नहीं था। सिंह पास आ गया था। सियारने इधर-उधर देखा। बेरके नीचे एक पत्थर पड़ा था। सियार उस पत्थरपर जाकर बैठ गया। वह अपनी पूँछ फटकार कर बड़बड़ाने लगा।

सिंह और पास आया। उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि नन्हा-सा सियार उसे देखकर भी डरता नहीं है। सिंहको क्रोध भी आ रहा था कि सियार उसकी ओर पीठ करके पत्थरपर बैठा था और पूँछ फटकारे जा रहा था।
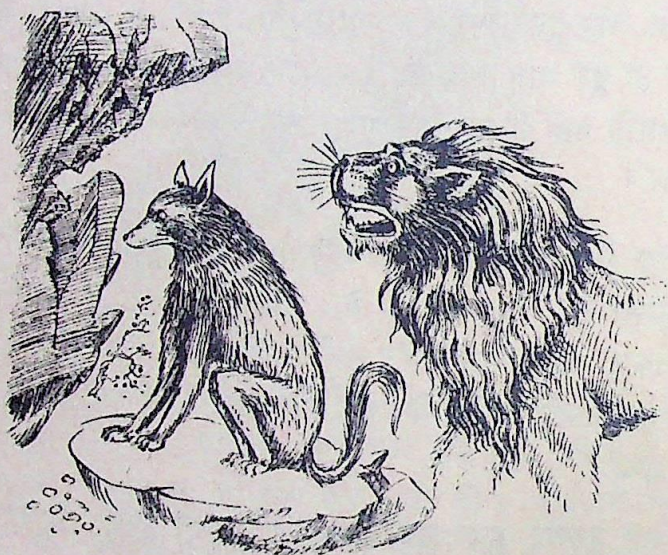
सियारने सिंहकी ओर देखा तक नहीं। वह बड़े जोरसे गिन रहा था— 'पाँच, दस, सात। सात, नौ, चार। चार, उन्नीस, ग्यारह। ग्यारह, छब्बीस, आठ। आठ, बत्तीस, चौदह।'

सिंहने पास आकर सियारको डाँटा— 'क्यों रे! तू मेरी ओर पीठ किये क्यों बैठा है? यह क्या बड़बड़ा रहा है।'

सियार जैसेका वैसा बैठा रहा। उसने पूँछ और जोरसे फटकार दी और बोला— 'तुम जंगलके राजा होकर भी मूर्ख

हो। देखते नहीं कि मैं उलट पहाड़ा कर रहा हूँ। इस समय मेरे काममें बाधा दी तो याद रखो—यह उलट पहाड़ा है।'

सिंहने पूछा—'उलट पहाड़ा क्या होता है।'

सियार चिल्लाकर बोला—'पहाड़, पहाड़, पहाड़ा और उलट। बस, चुप रहो। बोलो मत। इतना कहकर वह फिर गिनने लगा—'चौदह, चालीस, तीन। तीन, छत्तीस, उन्नीस। उन्नीस, बारह, दस। पीस दे सिंहको बस।'

बेचारे सिंहने मुंह उठाकर पहाड़की ओर देखा। उसने समझा कि सियार पहाड़को उसके सिरपर उलट जानेको कहता है। बस वह वहांसे भागा, भागता चला गया। सियारने डटकर बेर खाये और अपनी मांदमें लौट आया।

आपत्ति आनेपर जो लोग घबड़ा नहीं जाते और बुद्धिको ठिकाने रखते हैं, उन्हें उस आपत्तिसे बचनेका कोई-न-कोई उपाय सूझ ही जाता है।

न घरके न घाटके

एक बन्दर था। उसके शरीरके रोएँ दूसरे बन्दरोंसे जरा अधिक सफेद—भूरे जैसे थे। एक दिन वह एक मन्दिरमें गया। पीपलके पेड़के नीचे हनुमानजीका छोटा-सा मन्दिर था। बन्दर पीपलकी डालपर बैठ गया। मन्दिरमें एक बाबाजी हनुमानजीकी पूजा कर रहे थे। बाबाजीने पूजा करके हनुमानजीको सिन्दूर लगाया और फिर हनुमानजीके चरणोंपर लगा सिन्दूर अंगुलीसे अपने मस्तकपर लगा लिया। पूजा करके बाबाजी वहाँसे एक ओर हटकर बैठे और पाठ करने लगे।

बन्दर बाबाजीकी सब बात देख रहा था। वह भी डालपरसे धीरेसे उतरा। उसने हनुमानजीकी मूर्त्तिके ऊपरसे सिन्दूर लेकर अपने सिरपर लगा लिया। हनुमानजीको चढ़ाये हुए बतासे और बेर उसने मुँहमें भर लिये और फिर पेड़की डालपर जाकर बैठ गया।

थोड़ी देरमें वहाँ गाँवके कुछ किसान आये। किसानोंने हनुमानजीको भूमिमें लेटकर नमस्कार किया। उनकी मूर्त्तिपर फूल चढ़ाये। फिर वे लोग बाबाजीके पास गये। बाबाजीको उन्होंने प्रणाम किया। किसानोंने बाबाजीको कई अमरूद दिये।

बन्दरने सोचा कि माथेपर टीका लगा लेनेसे लोग साधु हो जाते हैं। दूसरे लोग उनको प्रणाम करते हैं और अमरूद देते

हैं। वह डालसे उतरकर किसानोंके सामने गया। उसने अपने सिरपर हाथ रखकर अपना टीका दिखाया। किसानोंमें-से एकने बन्दरको मारनेके लिए ईंटका टुकड़ा हाथमें लिया।

बन्दर कूदकर फिर पेड़पर चढ़ गया। वह बार-बार उछलता था, मुख फाड़ता था, अपने सिरका टीका दिखाता था और अपनी भाषामें कहता था— 'तुम लोग कैसे मूर्ख हो। देखते नहीं कि मैं बाबाजी हो गया हूँ। मुझे प्रणाम करो और अमरूद दो।'

किसानोंने समझा कि यह बन्दर बाबाजीको तङ्ग करेगा। वे पेड़पर भी ढेले चलाकर बन्दरको भगाने लगे। बन्दरको मार-के डरसे वहाँसे भागना पड़ा। उसने सोचा— 'मनुष्य केवल मनुष्यको ही बाबाजी मानते हैं। मैं तो बन्दर हूँ। मैं बन्दरोंका बाबाजी बनूँगा।'

वह बन्दर अपने समूहके बन्दरोंके पास पहुँचा औ. किलकारी मारकर डालपर कूदकर बोला— 'मैं बाबाजी हो गया हूँ। देखो, मेरे माथेपर टीका लगा है। तुम लोग मुझे प्रणाम करो और झटपट मालीके पेड़ोंसे मेरे लिए अमरूद तोड़ लाओ।

दूसरे बन्दर उस बन्दरकी बातको सुनकर उसकी हँसी करने-के लिए कूदने-फुदकने लगे। उन बन्दरोंका सरदार एक मोटा बन्दर था। उसे भूरे बन्दरकी बात सुनकर क्रोध आ गया। उसने कहा— 'तू पहिलेसे भूरा है। अब तू टीका लगाकर बाबाजी बनने लगा है। हम तुझे अपने साथ नहीं रहने देंगे।'
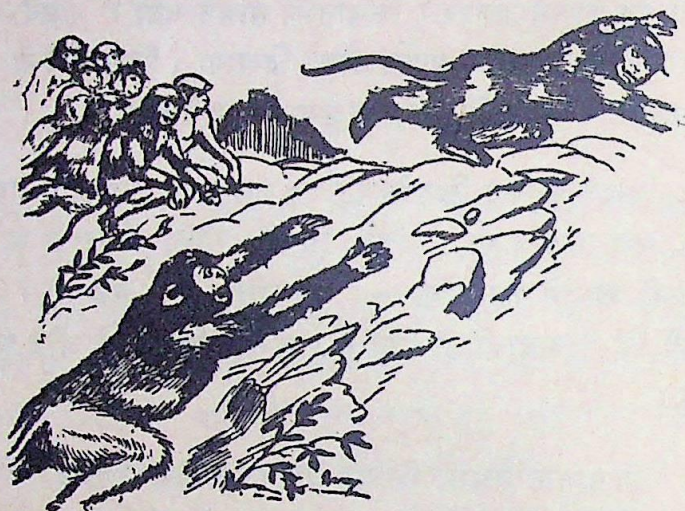
'हूप, हूप करके मोटे बन्दरको अपनी ओर दौड़कर आते देख भूरा बन्दर डरके मारे भागा। वह नहीं भागता तो मोटा बन्दर उसे बहुत काटता। भूरा बन्दर मनुष्योंकी बस्तीमें गया, लेकिन वहाँ भी लोग उसे पत्थर मार-मारकर भगाने लगे। वह अकेला पड़ गया।

ढोंग करनेसे भूरे बन्दरराम जैसे अपने दलसे निकाले गये और मनुष्योंने भी उन्हें खदेड़ दिया, वैसे ही जो लोग दम्भ करते हैं, जो गुण अपनेमें नहीं उसे बतानेका प्रयत्न करते हैं, सब कहीं उनका तिरस्कार ही होता है। दूसरोंकी नकल करके ढोंग करना अच्छा नहीं होता।

पहलवानजी

एक पहलवानजी थे। खूब लम्बे, तगड़े और मोटे। प्रति-दिन सुबह-शाम अखाड़ेपर जाते थे। लङ्गोटे लगाकर झपाटा-बन्द-दो-चार सौ बैठकें करते और सौ-दो-सौ दण्ड भी कर लेते। बहुतसे युवक उनके अखाड़ेपर आते थे। पहलवानजी उन्हें कुश्ती लड़ना सिखाया करते थे।

जब व्यायाम पूरा हो जाता और पहलवानजी पसीनेसे लथ-पथ हो जाते तो अखाड़ेमें बैठ जाते। दूसरे युवक उनके शरीरको अखाड़ेकी मिट्टी लगाकर मलते थे। सारे शरीरमें मिट्टी लगाये अकड़ते हुए पहलवानजी घर लौटते और ढाई सेर दूध सड़ापसे पी जाते।

व्यायाम करना और कुश्ती लड़ना अच्छा काम है। इससे शरीर स्वस्थ रहता है, मनुष्य बलवान होता है। लेकिन पहलवान बनकर कुश्तीकी ही धुनमें रहना, अपने बलका घमण्ड करना और सब कहीं जोर दिखाना अच्छा नहीं।

एक बार उस बाजारमें जहाँ पहलवानजी रहते थे, कवि सम्मेलन हो रहा था। दूर-दूरके कवि लोग आये थे। तम्बू लगा था। मंचपर गलीचे बिछे थे। नीचे लोगोंको बैठनेके लिए दरियाँ बिछी थी। बाजारके और आस-पासके गाँवोंके लोग कविता सुनने आये थे। सभापतिजी एक-एक कविका नाम लेते

थे, थोड़ा-सा परिचय देते थे। जिसका नाम लिया जाता था, वे उठकर अपनी कविता सुनाते थे। अच्छी कविता सुनानेपर प्रसन्न होकर लोग तालियाँ बजाते थे।

पहलवानजी भी कविता सुनने गये थे। वे मंचके पास ही बैठे थे। उस सम्मेलनके सभापतिजीने एक कविका नाम लेकर कहा— 'वे अपनी कलासे आप लोगोंका मनोरञ्जन करेंगे।'

पहलवानजीके मनमें आया कि जब कला ही दिखानी है तो वे भी अपनी कला क्यों न दिखावें। उन्होंने उठकर सभापतिजी-से कहा— 'मैं भी अपनी कला दिखाना चाहता हूँ।'

सभापतिजीने समझा कि पहलवानजी भी कोई कविता सुनावेंगे। जब एक कवि कविता सुनाकर बैठ गये, तब सभा-पतिजीने कहा— 'अब पहलवानजी कविता सुनावेंगें।'

पहलवानजी मंचपर चढ़कर बोले— 'भाइयो! मैं कविता नहीं सुनाऊँगा। मैं तो अपनी कला दिखाने यहाँ आया हूँ।'

पहलवानजीने कुर्त्ता उतारा, गंजी उतारी और धोती खोल फेंकी। धोतीके नीचे वे सदा लङ्गोट पहिने रहते थे। अब वे मंचपर दबा-दब दण्ड करने लगे सौ दण्ड करनेका समय नहीं था। दस-पांच दण्ड और पचीस-तीस बैठक करके बड़े जोरसे ताल ठोंकर उन्होंने एक बड़े-बड़े घुंघराले बालोंवाले कविजी-का हाथ पकड़ा और उन्हें खींचते हुए बोले— 'आइये! आप अलापना अच्छा जानते हैं। अब एक पकड़ हो जाय। ज़रा मेरी कलाका मज़ा लीजिये।'
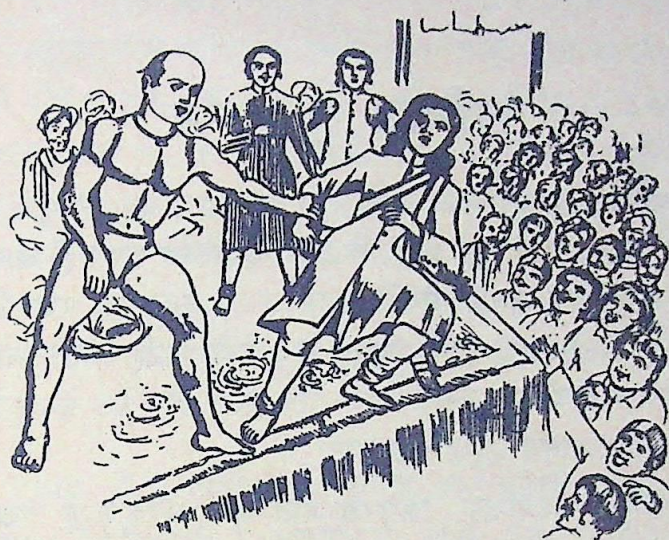
बेचारे दुबले पतले कविजीका हाथ पहलवानजीके पकड़नेसे ही दर्द करने लगा। वे गिड़-गिड़ाने लगे। भीड़के लोग ताली पीटने और हँसने लगे। सभापतिजीने बड़ी कठिनाईसे पहलवान-जीसे कविजीका पिण्ड छुड़ाया। सब लोग पहलवानजीको व्यङ्ग सुनाकर हँस रहे थे; किंतु पहलवानजी समझते थे कि लोग उनकी कलासे प्रसन्न होकर प्रशंसा कर रहे हैं।

किस समय किस स्थानपर क्या काम करना चाहिये, और क्या नहीं करना चाहिये, यह बिना सोचे जो लोग सब कहीं अपनी ही धुनमें रहते हैं और अपनी ही रट लगाये रहते हैं, वे मूर्ख समझे जाते हैं। पहलवानजीके समान ही उनकी हँसी होती है।

पण्डित लुढ़कूराम

पण्डित लुढ़कूरामका ठीक नाम क्या था, यह तो मुझे पता नहीं। उनकी तोंद खूब बड़ी थी और वे भोजन करते ही खाटपर लुढ़क पड़ते थे, इससे लोगोंने उनका नाम लुढ़कूराम रख दिया था। वे ढीली-ढाली धोती पहनते थे, बड़ी भारी पगड़ी बाँधते थे। बगल बन्दी पहिनकर उसके बन्द खुला छोड़ देते थे; क्योंकि उनकी तोंद उससे बहुत कस जाती थी।

पण्डित लुढ़कूराम जिधरसे जाते थे, बच्चे उन्हें देखकर ताली बजाकर हँसते थे। कभी कोई भूले भटके ही उन्हें निमन्त्रण देता था। क्योंकि लुढ़कूरामजी पूरा पाँच सेर भोजन करने वाले थे।

एक बार एक धनी व्यापारीने पण्डितजीको निमन्त्रण दिया। जब पण्डितजी वहाँ पहुंचे तो व्यापारीने कहा— 'पण्डितजी! अभी भोजन बननेमें तो देर है। आप कहें तो थोड़ा-सा जलपान आपके लिए मँगा दिया जाय।'

पण्डितजी बोले— 'आज-कल मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। भोजन ठीक पचता नहीं। मैं बहुत कम भोजन करने लगा हूँ। लेकिन आपकी श्रद्धा है तो कुछ जलपान मँगवा दीजिये।'

व्यापारीने पूछा— 'आप मिठाई पसन्द करेंगे या हलवा ?'

पण्डितजीने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—'थोड़ा-थोड़ा दोनों ले-लेनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन थोड़ा ही मँगाइये। मैं बहुत कम भोजन करने लगा हूँ। यही कोई आधा सेर मिठाई और आधा सेर हलवा मँगा दीजिये। बीमारीमें दूध पीना अच्छा रहता है। थोड़ा-सा, लगभग सेर भर गरम दूध भी मँगवा दीजिये तो बस। इतनेसे अभी जलपान हो जायगा। भोजन धीरे-धीरे बने तो कुछ हर्ज नहीं। मुझे तो वैसे भी आज-कल भूख नहीं लगती।'

व्यापारी पण्डितजीके जलपानकी बात सुनकर चौंका। उसने कहा— 'पण्डितजी ! भगवानकी बड़ी कृपा है कि आपको आज-कल भूख नहीं लगती। आपको कहीं भूख लगने लगे तो··· ।'

पण्डितजीने बीचमें ही कहा— 'हाँ सेठजी ! मुझे लगती तो थोड़ा बहुत कुछ खा भी लिया करता। भूख तो लगती ही नहीं। पेट गुड़-गुड़ किया करता है। बस, यही मुँह जूठा करना रहता है।'

एक नटखट लड़का बोला— 'आपका पेट गुड़-गुड़ नहीं करता। वह गुड़ माँगता है। आपको गुड़ खाना है ?'

सभी लोग पण्डितजीकी हँसी करते थे। बेचारे पण्डित लुढ़कूराम क्या करते। उनकी बात कोई मानता ही नहीं था कि उन्हें सचमुच भूख नहीं लगती। उनका स्वास्थ्य खराब रहता है।

तुम्हें पण्डित लुढ़कूरामकी बातपर विश्वास होता है ? देखो उनकी बात सच्ची थी । पाँच सेर भोजन करनेसे बलवान होनेके बदले वे कमजोर ही हुए थे । उनसे थोड़ी दूर पैदल नहीं चला जाता था । दौड़ तो वे सकते नहीं थे ।

जो लोग स्वादके लोभमें ठूंस-ठूंस कर खाते हैं, उनकी तोंद बेहद बढ़ जाती है । वे रोगी हो जाते हैं । उनका पेट खराब रहता है । भोजन चाहे जितना स्वादिष्ट हो , ठूंस-ठूंस कर मत खाओ । भूखसे थोड़ा कम ही खाओ । ठूंस-ठूंस कर भोजन करोगे तो लुढ़कूराम बनना पड़ेगा ।

घोंघा बसन्त

पण्डित बसन्तरामजी काशीसे पढ़कर अपने घर आये थे। उन्होंने कई वर्षोंमें व्याकरण शास्त्रीकी परीक्षा दी थी। गांवमें संस्कृतकी कोई पाठशाला नहीं थी। बसन्तरामजीके पिता अपने यजमानोंके घर पूजा-पाठ किया करते थे। बसन्तरामको भी पिताने यही काम करनेको कहा। क्योंकि उनके पिता बूढ़े हो गये थे और अब चलने-फिरनेमें उन्हें बड़ा कष्ट होता था

पण्डित बसन्तरामजीको पहिले ही एक अहीरके घर सत्य-नारायणजीकी कथा बाँचने जाना पड़ा। जैसे ही पण्डितजी अहीरके घर पहुँचे, अहीरने बड़ी श्रद्धासे हाथ जोड़कर कहा— 'पण्डितजी ! पालागी।'

आशीर्वाद देनेके स्थानपर पण्डितजी बिगड़े— 'तुम अशुद्ध क्यों बोलते हो ! अशुद्ध बोलकर मेरा अपमान करते हो ? मैं तुम्हारे घर कथा नहीं बाँचूंगा।'

अहीर समझदार था। उसने समझ लिया कि नये पण्डित 'पढ़े हैं, पर गुने नहीं हैं।' उसने पण्डितजीके पैर पकड़कर प्रार्थना की— 'महाराज ! हम तो गँवार लोग हैं। हमें भला शुद्ध बोलना क्या आवे। लेकिन आप जैसे विद्वान् हमारे गाँवमें आये हैं तो हम धीरे-धीरे कुछ सीख जायँगे। अभी तो हमारा पराध क्षमा कीजिये।'

पण्डित बसन्तरामको लगा कि उनको एक शिष्य तो मिला। उन्होंने उस बूढ़े अहीरसे कहा—'तुम कलसे मेरे पास आकर पढ़ो। मैं तुम्हें व्याकरण पढ़ा दूंगा। तुम्हें शुद्ध बोलना आ जायगा।'

अहीरने हँसते हुए कहा—'महाराज! मेरा ब्याह तो आपके पिताजीने कराया था। अब भला मैं बूढ़ा आदमी क्या ब्याह करूँगा। मैं अपने लड़केकी सगाई कर चुका हूँ। आप उसका ब्याह करा दीजियेगा।'

पण्डितजी झुँझलाकर बोले—'मैं ब्याह करानेकी बात नहीं कहता। तुम्हें व्याकरण पढ़ाना है।'

अहीर बोला—'पण्डितजी! भगवानकी कृपा है। मेरी दोनों भैंसे ब्याई हैं। आप चिन्ता न करें। आपको भरपेट दही खिलाऊँगा।'

इतनेमें अहीरकी एक भैंस बड़े जोरसे चिल्लाने लगी। पण्डित बसन्तरामजीने दोनों कान कसकर बन्द कर लिये। वे

क्रोधसे पैर पटक-पटककर चिल्लाने लगे—'अशुद्ध ! अशुद्ध ! अशुद्ध ।'

पण्डितजीका पोथी-पत्रा नीचे गिर गया। लेकिन उनके पिताजी उसी समय वहाँ आ गये । वे अपने पुत्रको सत्यनारायण भगवानका पूजन सिखाने आये थे । धीरे-धीरे चलनेके कारण वे पीछे पहुँचे थे । उन्होंने पोथी उठायी और पुत्रको डांटा—'तू भैंसको भी व्याकरण पढ़ाना चाहता है ?'

पण्डित बसन्तरामजीने चौंककर कहा—'यह भैंस बोलती है ?'

अहीर हँसते-हँसते लोट-पोट हो रहा था । बूढ़े पण्डितजीको भी हँसी आ गयी । वे पुत्रको झिड़ककर बोले—'तू घोंघा बसन्त है ।'

बेचारे पण्डित बसन्तरामका नाम ही घोंघा बसन्त पड़ गया । गांवके लड़के उन्हें घोंघा बसन्त कहकर चिढ़ाते थे ।

तुम जो कुछ पढ़ते हो, उसे समझ लो और उसका व्यवहार करना सीखो, जिससे कोई तुमको घोंघा बसन्त कहकर न चिढ़ावे ।

बेपेंदीका लोटा

तुमने मिर्जापुरका बना गोल पेंदीका लोटा देखा है? उसे तनिक-सा हिलाते ही चाहे जिधर लुढ़क जाया करता है। जिन लोगोंका कोई सिद्धान्त नहीं होता, आज एक बात और कल दूसरी बात करते हैं, उन्हें लोग बेपेंदीका लोटा कहते हैं।

एक राजाके पास एक मुँह लगा नौकर था। एक दिन राजा अपने बगीचेमें टहल रहे थे। एक क्यारीमें बैंगनके पेड़ लगे थे। लम्बे-लम्बे चिकने रंग-बिरंगे बैंगन सुन्दर दीखते थे। राजा क्यारीके पास खड़े होकर बोले— 'बैंगन बड़ा सुन्दर साग है। बड़ा स्वादिष्ट होता है।

उस नौकरने कहा— 'महाराज! बैंगन सागोंका राजा है। भगवानने उसके सिरपर इसीलिए मुकुट रख दिया है।'

राजा थोड़ी दूर आगे गये। खेतमें मिर्चेके पेड़ लगे थे। लाल-लाल मिर्चे धूपमें चमक रहे थे। राजाने कहा— 'मिर्चा सागका भूषण है। उसके बिना सागमें स्वाद ही नहीं आता।'

नौकर बोला— 'सरकार! ब्रह्माजीने सागोंमें यही एक रत्न बनाया है। इसका रंग माणिक जैसा लाल है।'

राजा आगे चले। इमलीका खूब बड़ा, खूब घना पेड़ था। हवाके झोंकेसे इमलीके फल झूम रहे थे। राजाने कहा— 'इमली भी क्या उत्तम फल है। इसका नाम लेते ही मुँहमें पानी आने लगता है।'

नौकर झटपट बोला— 'इमलीका क्या पूछना। फलोंका सरदार तो यही है। इतना बढ़िया झूला सृष्टिकर्त्ताने इसीलिए इसको दिया है।'

उस दिन राजाने रसोइयेको मिर्चा और इमली डालकर बैंगनका शाक बनानेको कहा। भोजन करते समय ही उन्हें थोड़ा कष्ट हुआ और पीछे तो पेट गुड़गुड़ करने लगा। उन्होंने पलंगपर पड़े-पड़े नौकरसे कहा— 'बैंगन बहुत बुरा साग है। उससे पेटमें वायु बढ़ती है। पेट दुखता है।'

नौकरने झुककर राजाको प्रणाम किया और बोला— 'महाराज! उसका नाम ही बेगुन है। किसीको वह वायु बढ़ाता है, किसीको पित्त। है भी वह अपवित्र। पेटमें भरते समय बैंगनकी बीज रह जाय तो नरक जाना पड़ता है।'

राजाने पेटको दबाकर कहा— 'मिर्चा भी बुरा है। वह पेटमें जलन करता है।'

नौकर बोला— 'मिर्चा क्या कोई खानेकी वस्तु है। उसको पीसते समय पीसने वालेके नेत्रोंसे आँसू निकलते हैं। वह तो आग है, आग। जहाँ जाता है, जलाता ही है।'

राजाने करवट बदलते हुए कहा— 'यह इमली भी अच्छी वस्तु नहीं। आज मेरे दाँत ही उससे खट्टे हो गये।'

नौकर— 'इमलीको अच्छा कौन कहता है। वह तो रोगोंका घर है। उसके पेड़के नीचे बराबर सोनेवाले रोगी हो जाते हैं, फल खानेवाले भला क्यों रोगी नहीं होंगे।'

राजाने नौकरको डाँटा— 'तू उस दिन तो बैंगन, मिर्चा, इमलीकी प्रशंसा कर रहा था और आज उनकी निन्दा कर रहा है ?'

नौकरने हाथ जोड़कर कहा— 'महाराज ! मैं न बैंगनका नौकर हूँ, न मिर्चेका और इमलीका। मैं तो आपका नौकर हूँ।'

राजाने कहा— 'तू स्वार्थी और चापलूस है। तेरा कोई सिद्धान्त नहीं। मुझे ऐसा बेपेंदीका लोटा नहीं चाहिये।' उन्होंने नौकरको निकाल दिया।

जो लोग स्वार्थके लिए सिद्धान्त बदला करते हैं, उन्हें लोग 'बेपेंदीका लोटा' कहते हैं। उनका समाजमें सम्मान नहीं होता।

श्रीकृष्ण-सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देश का वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। 'श्रीकृष्ण--सन्देश' प्रतिमास लगभग ७२ पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

वार्षिक शुल्क	१२ रुपये।
आजीवन शुल्क	१५१ रुपये।

सम्मव हो तो आजीवन ग्राहक बने।

व्यवस्थापक-श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवा-संस्थान
मथुरा-२८१००१

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"